भारत के वित्तीय क्षेत्र सुधार : वृद्धि को प्रोत्साहन और जोखिम को रोकना *

- राकेश मोहन

येल में पुनः आने पर मैं गौरवान्वित हूँ, जहाँ मैंने अन्य विद्वानों के साथ-साथ जेम्स टोबिन, बिल नॉर्डास और राबर्ट इवेंशन से अर्थशास्त्र की अपनी बुनियादी शिक्षा प्राप्त की थी । इन सभी वर्षों में येल में मेरा यह पहला व्याख्यान है, इसलिए यह अवसर पाकर मैं विशेष रूप से आनंदमग्न हूँ । प्रो.श्रीनिवासन ! मैं आपका धन्यवाद करता हूँ ।

इस वर्ष जुलाई के अंत से अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों में आयी उथल-पुथल ने और वित्तीय बाजार इस समय जिस बढ़ी हुई अनिश्चितता का अनुभव कर रहे हैं, उन्होंने वित्तीय क्षेत्र से संबंधित मुद्दों को हमारे सामने ला खड़ा किया है। कुछ अंश तक हाल की गतिविधियाँ अपने घटित होने और वित्तीय क्षेत्र की हानियों के उभरते परिमाण के संदर्भ में अभूतपूर्व हैं । परंपरागत काउंटरपार्टियों के बीच अचानक भरोसा कम हो जाना जोखिम विस्तार के जटिल संस्तरण और उच्च उत्तोलन से उत्पन्न अत्यधिक सूचना विषमता को प्रतिबिंबित करता है; और प्रतिष्ठित ऋण पात्रता निर्धारण एजेंसियों और इसी प्रकार के अन्य द्वारा जोखिम मूल्यांकन में गड़बड़ी को प्रतिबिंबित करता है । संक्रामकता की गति और बड़े, प्रतिष्ठित एवं विनियमित वित्तीय संस्थाओं का व्यापक अंतर्वलन विनियामक कमियों का संकेत देते हैं, जिन्होंने केंद्रीय बैंकों की अपरंपरागत प्रतिक्रिया को आवश्यक बना दिया है। इन सबों ने इस प्रकार की गतिविधियों से उत्पन्न होनेवाले आघातों को सहन कर पाने की राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली की योग्यता और नमनीयता के संबंध में गंभीर चिंता जगायी है । इसने मौद्रिक नीति के कुछ पहलुओं पर और वित्तीय विनियमन पर कुछ पुनर्विचार करने को प्रेरित किया है, खासकर जब वे वित्तीय स्थायित्व को बनाये रखने से संबंधित हैं ।

भारत अब तक इन गतिविधियों से अपेक्षाकृत रूप से अप्रभावित रहा है और इन गतिविधियों के प्रभाव के

* येल विश्वविद्यालय में 3 दिसंबर 2007 को डॉ.राकेश मोहन, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक, द्वारा दिया गया भाषण । भाषण तैयार करने में माइकल पात्रा, मुनीश कपूर और इंद्रनील भट्टाचार्य की सहायता को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया जाता है ।

संबंध में हमारा विश्लेषण यह बताता है कि संकटग्रस्त सबप्राइम आस्तियों और संबंधित डेरिवेटिवों में हमारी जोखिम अनेक अन्य अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में नगण्य थी । जबकि कुछ लोग इसे दैवयोग मान सकते हैं, यह शायद वित्तीय क्षेत्र सुधार और विकास के प्रति हमारा सूक्ष्म दृष्टिकोण रहा है, जिसने हमें अच्छी तरह लाभ पहुँचाया है; हमारे दृष्टिकोण में कई मोर्चों पर समन्वित एवं क्रमबद्ध कार्रवाई सजग आनुक्रमिकता से करने पर ध्यान दिया गया है, जो विशेष रूप से वित्तीय प्रणाली में और सामान्य रूप से अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के लिए तैयार रहने पर आधारित है । हमने देश में प्रचलित नियंत्रण मानकों, जोखिम प्रबंधन प्रणालियों और वित्तीय संस्थाओं में प्रेरक ढाँचों को ध्यान में रखते हुए स्थायित्व को सुनिश्चित करने के लिए युक्तियुक्त सुरक्षा-कवच भी निर्मित कर लिये हैं। कुल मिलाकर इन प्रगामी लेकिन सतर्क नीतियों ने वित्तीय प्रणाली में दक्षता में योगदान किया है, जबकि इन्होंने समष्टिआर्थिक और वित्तीय स्थायित्व के वातावरण में वृद्धि की गति को बनाये रखा है । फिर भी, हम रिज़र्व बैंक में अधिक सतर्क रहते हैं कि वैश्विक वित्तीय गतिविधियों में हो रही अत्यधिक अनिश्चितता की स्थिति में युक्तियुक्त प्रतिक्रिया करें। नीति संबंधी चुनौती यह है कि अंतरराष्ट्रीय वित्तीय उथल-पुथल की इस अवधि के दौरान भारत में वित्तीय स्थिरता बनाये रखी जाये, जबकि मूल्य स्थिरता के साथ-साथ उच्च वृद्धि की गति को भी बनाये रखा जाये ।

इस पृष्ठभूमि में मैंने सोचा कि मैं इस अवसर का उपयोग वित्तीय क्षेत्र सुधारों के प्रति भारत के दृष्टिकोण की, लगभग दो दशकों में प्रतिबंधात्मक, यहाँ तक कि दमनकारी अतीत से हम जितना रास्ता तय कर चुके हैं उसकी, वित्तीय मध्यस्थता का सामना करने में प्रतिस्पर्द्धा और कुशलता का प्रयोग करने में हमारे रूढ़ि-विरोधी सूक्ष्म दृष्टिकोण की और आने वाले वर्षों में हमारे वित्तीय क्षेत्र के विकास में आने वाली चुनौतियों की समीक्षा करने में करूँगा ।

II. वित्तीय क्षेत्र सुधार और नतीजे

जब हम अतीत में झाँकते हैं, तो यह पाते हैं कि भारत में वित्तीय क्षेत्र सुधार की प्रमुख सफलता, जबसे वे 1990 के दशक के आरंभ में लागू किये गये थे, इस अवधि के दौरान भी वित्तीय स्थिरता बनाये रखने में रही है , जब पूरे विश्व में बार-बार वित्तीय संकटों का सामना किया जा रहा था । सुधार की प्रक्रिया न केवल इसके रास्ते के इर्द-गिर्द होने वाली उथल-पुथल के लिए उल्लेखनीय है, बल्कि वह हमारे प्रस्थान बिन्दु से आरंभ होने वाले परिवर्तन के विशुद्ध आयामों के लिए भी उल्लेखनीय है ।

1990 का दशक आरंभ होने तक भारत में वित्तीय क्षेत्र की स्थिति का वर्णन 'वित्तीय दमन' के आदर्श उदाहरण के रूप में किया जा सकता है (मैक-किन्नन 1973, शॉ 1973) । इस क्षेत्र की विशेषता, अन्य बातों के साथ, नियंत्रित ब्याज दरें, अधिकारियों द्वारा संसाधनों का बड़ा पूर्वक्रय अधिकार, व्यापक व्यष्टि विनियमन, जो वित्तीय मध्यवर्तियों को और से निधियों के प्रवाह को निदेशित करता था, अपारदर्शी लेखांकन मानदंड और सीमित प्रकटीकरण, तथा प्रबल सरकारी स्वामित्व, रही थी । विभिन्न प्रकार के वित्तीय मध्यवर्तियों के कार्यकलापों को भिन्न-भिन्न खंडों में बाँटने तथा तगड़ी प्रवेश बाधाओं ने प्रतिस्पर्द्धा को निष्फल बना दिया, जिसका परिणाम हुआ कार्यकुशलता और उत्पादकता का न्यून स्तर होना और निजी क्षेत्र के संबंध में कठोर ऋण-प्रतिबंध, खासकर बाह्य वित्त तक किसी प्रकार की पहुँच के अभाव में । पूँजीकरण के स्तर न्यून थे, जिसका कारण था ऋण आयोजना में वाणिज्यिक विचार की कमी और दुर्बल वसूली कार्य, जिसके चलते भी अनर्जक आस्तियों का ढेर लग गया । भारत के नियत आय वाले प्रतिभूति बाजार में सरकारी प्रतिभूतियों

की प्रधानता मुख्यतः इस बाजार के निष्क्रिय स्वरूप को प्रतिबिंबित करती थी, क्योंकि अधिकांश वित्तीय मध्यवर्तियों के लिए यह अनिवार्य होता था कि वे अपने द्वारा जुटायी गयी निधियों का काफी बड़ा हिस्सा ऐसी प्रतिभूतियों में निवेश करें, ताकि सरकार के उच्च उधारों का वित्तपोषण नियंत्रित/रियायती ब्याज दरों पर किया जा सके। पूँजी बाजार में, नये इक्विटी निर्गमों का नियंत्रण जटिल विनियमों और व्यापक प्रतिबंधों के आधिक्य के साथ किया जाता था, जिसके चलते ऐसी प्रतिभूतियों के द्वितीयक बाजार में क्रय-विक्रय में अत्यल्प पारदर्शिता और गहनता होती थी । व्यापक विदेशी मुद्रा नियंत्रण का परिणाम होता था विदेशी मुद्रा बाजार में कम गहनता होना, जिसमें अधिकांश बाह्य लेन-देन का नियंत्रण अनमनीय/न्यून सीमाओं और पूर्व अनुमोदन की शर्त के साथ किया जाता था । मौद्रिक नीति राजकोष के वशवर्ती होती थी । तदर्थ खजाना बिलों के माध्यम से राजकोषीय निभाव का प्रावधान होने से 1980 के दशक के अधिकांश भाग में राजकोषीय घाटे का मुद्रीकरण उच्च स्तर पर होता था । राजकोषीय खर्च के विस्तारवादी प्रभाव को ब्याज दर विनियमों, ऋण अनुभाजन और उच्च आरक्षित निधि अपेक्षाओं के माध्यम से रोका जाता था, जिसके चलते वित्तीय बाजारों का विकास रुकता था।

मैंने भारत के वित्तीय क्षेत्र सुधारों से संबंधित अनुभवों के विविध पहलुओं, मार्गदर्शी उद्देश्य और बौद्धिक विश्लेषणात्मक मजबूती; गति और अनुक्रम के विकल्प; बैंकिंग क्षेत्र, गैर-बैंक वित्तीय कंपनियों, मीयादी ऋणदात्री संस्थाओं और अन्य वित्तीय मध्यवर्तियों के लिए नीतिगत उपायों के विनिर्दिष्ट पहलुओं; वित्तीय बाजारों के विकास; और मौद्रिक नीति ढाँचे में परिवर्तन को अन्यत्र प्रलेखित करने का प्रयास किया है (मोहन, 2004; मोहन, 2006 सी) । आज मैं वित्तीय क्षेत्र सुधारों का मूल्यांकन वास्तविक नतीजे के संदर्भ में करना चाहता हूँ ।

II.1 मौद्रिक नीति

मौद्रिक नीति का मूल्यांकन करते हुए यह निश्चयपूर्वक कहना उचित होगा कि 1990 के दशक के प्रारंभ से सुधार पश्चात् अवधि में अपने प्रमुख उद्देश्यों को पूरा करने में यह अधिकांश रूप से सफल हुई है । पिछले दशक में मुद्रास्फीति की दर प्रतिवर्ष पाँच प्रतिशत के निकट रही है, जो पिछले चार दशकों के औसत 7-8 प्रतिशत से उल्लेखनीय रूप से नीचे है । 1990 के दशक के प्रारंभ से संरचनात्मक सुधार के साथ समुन्नत मौद्रिक राजकोषीय अंतःसीमा और सरकारी प्रतिभूति बाजार में सुधारों ने 1990 के दशक के दूसरे आधे हिस्से में और उसके बाद बेहतर मौद्रिक प्रबंध को समर्थ बनाया । अनेक अन्य कारकों, यथा, बढ़ी हुई प्रतिस्पर्द्धा, उत्पादकता लाभ और सुदृढ़ कंपनी तुलनपत्रों, ने भी इस न्यून एवं स्थिर मुद्रास्फीति वातावरण में योगदान किया है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि अंशांकित मौद्रिक उपायों ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह बात है कि न्यून एवं स्थिर मुद्रास्फीति की अवधि ने, बदले में, मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं को स्थिर बना दिया है और अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की सह्य सीमा का प्रारंभिक स्तर महत्वपूर्ण रूप से नीचे आ गया है (सारणी 1)।

यह नोट करना उत्साहवर्द्धक है कि कच्चे तेल की उच्च अंतरराष्ट्रीय कीमतों, अन्य पण्य कीमतों और ऊँची खद्यान्न कीमतों के बावजूद मुद्रास्फीति न्यून स्तर पर बनी हुई है और मुद्रास्फीति प्रत्याशाएँ सुसंगत और स्थिर प्रतीत होती हैं । परिणामस्वरूप सांकेतिक और वास्तविक ब्याज दरों, दोनों में गिरावट आयी है। हाल के वर्षों में वित्तीय पुनर्संरचना और न्यून ब्याज दरों के कारण कंपनियों के ब्याज व्यय की वृद्धि दर में वर्ष 1995-96 से सुसंगत रूप से कमी आयी है; ऐसी कमी का महत्वपूर्ण निहितार्थ पूरे कंपनी क्षेत्र के निम्नतर आधार

सारणी 1 : भारत में वृद्धि और मुद्रास्फीति - एक ऐतिहासिक अभिलेख

(प्रतिशत)

अवधि (औसत)	जीडीपी वृद्धि दर	डब्लूपीआई मुद्रास्फीति दर
1	2	3
1951-52 से 1959-60	3.6	1.2
1960-61 से 1969-70	4.0	6.4
1970-71 से 1979-80	2.9	9.0
1980-81 से 1990-91	5.6	8.2
1991-92 (संकट वर्ष)	1.4	13.7
1992-93 से 1999-00	6.3	7.2
2000-01 से 2006-07	6.9	5.1
2003-04 से 2006-07	8.6	4.9

स्रोत : रेड्डी (2007)

में सुधार और वित्तीय आधानों के प्रति उनकी समुत्थानशक्ति है ।

मौद्रिक ढांचे के संदर्भ में भारत का दृष्टिकोण कुछ-कुछ रूढ़िविरोधी रहा है । परंपरागत रूप से केंद्रीय बैंकों ने मूल्य स्थिरता और वृद्धि या रोजगार के युग्म उद्देश्यों का अनुसरण किया है, जबकि हाल के वर्षों में मुद्रास्फीति लक्ष्यित प्रणाली के माध्यम से मूल्य स्थिरता बनाये रखने पर अधिक ध्यान दिया गया है । हालाँकि भारतीय संदर्भ में मूल्य स्थिरता के लिए कोई सुस्पष्ट अधिदेश नहीं है, भारत में मौद्रिक नीति के उद्देश्यों का विकास मूल्य स्थिरता और अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों के बीच पर्याप्त ऋण-प्रवाह सुनिश्चित किये जाने के बीच न्यायोचित संतुलन बनाये रखने के रूप में हुआ है । तथापि, वित्तीय स्थिरता के विचार भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलेपन, वित्तीय एकीकरण और संक्रामकता की संभावना की दृष्टि से हाल के वर्षों में मौद्रिक नीति उद्देश्यों के ऊपर आये हैं । तदनुसार, हमारा विश्वास है कि वित्तीय प्रणाली का विनियमन, पर्यवेक्षण और विकास व्यापक रूप से निर्वचित समग्र मौद्रिक नीति की न्यायसंगत सीमा के भीतर बना हुआ है ।

वित्तीय क्षेत्र सुधारों और 1990 के दशक में अर्थव्यवस्था के खोले जाने के परिणामस्वरूप रिज़र्व बैंक ने वर्ष 1998-99 में बहुविध संकेतक दृष्टिकोण की ओर स्विचओवर किया, जिससे मौद्रिक नीति बनाते समय समष्टिआर्थिक और वित्तीय बाजार के आँकड़े परिमाण और दर वैरिएबल्स, दोनों के संबंध में, उत्पादन के साथ, जाँचे जाते हैं । हमारा विश्वास है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विशिष्ट लक्षण, अपनी समाजार्थिक विशेषताओं सहित, मौद्रिक अधिकारियों के लिए यह आवश्यक बना देते हैं कि वे आने वाले कुछ समय तक बहुविध उद्देश्यों और संकेतकों के साथ परिचालन करें। मौद्रिक नीति के लिए एकल उद्देश्य, जिसकी वकालत खासकर एक मुद्रास्फीति लक्ष्यांक (आईटी) ढाँचे में की जाती है, एक विलासोपकरण है, जिसके लिए भारत समर्थ नहीं है, कम से कम मध्यावधि में। जहाँ तक आईटी का संबंध है, यद्यपि 1990 के दशक के प्रारंभ से ही आईटी को अपनाने वाले केंद्रीय बैंकों की संख्या बढ़ी है, फिर भी अनेक केंद्रीय बैंक, खासकर फेडरल रिज़र्व, बहुविध उद्देश्यों पर कार्य करते हैं।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, मौद्रिक नीति निर्माण का कोई अनुपम या सर्वोत्तम तरीका नहीं है, और भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण या ढाँचे युक्तियुक्त रूप में नानाविध संस्थागत, आर्थिक एवं सामाजिक वातावरणों का अनुकूलन कर सकल नीतियाँ बना सकते हैं (इसिंग, 2004)। इसके अतिरिक्त, कुछ साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि प्रमुख गैर आईटी वाले देशों में औसत मुद्रास्फीति के अतिरिक्त इसकी अस्थिरता, वस्तुतः प्रमुख आईटी वाले देशों की तुलना में कुछ-कुछ न्यून स्तर पर रही है । आईटी का कोई लाभकारी प्रभाव दीर्घावधि ब्याज दरों के स्तर पर भी नहीं पड़ा है (ग्रैमलिक, 2003; बॉल और शेरिडन, 2003)। इसके अतिरिक्त, एक आईटी ढाँचा किसी केंद्रीय बैंक को आघातों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए उपलब्ध लचीलेपन को घटा देता है (काह्न, 2003)। उभरते बाजार वाली अर्थव्यवस्थाएँ (ईएमई) आईटी प्रणाली में अतिरिक्त समस्याओं का सामना करती हैं ।

ये अर्थव्यवस्थाएँ विशिष्ट रूप से खुली होती हैं और यह उन्हें बड़े विनिमय दर आघातों के प्रति असुरक्षित बना देती है, जिसका महत्वपूर्ण प्रभाव अल्पावधि मुद्रास्फीति पर हो सकता है। पूँजी प्रवाह की तेजी से विनिमय दरों में काफी उतार-चढ़ाव हो सकता है। ईएमई को और अधिक गंभीरता से विनिमय दरों का प्रबंध करना पड़ सकता है, क्योंकि वे उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में अधिक पण्य-कीमत संवेदनशील हो सकती हैं और पण्य कीमतों में उतार-चढ़ाव उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति की पूर्वानुमेयता के साथ उन पर तबाही का कारण बन सकता है (आइकेनग्रीन, 2002)। जिन ईएमई ने आईटी को अपनाया है, उनके अनुभवों के अनुभवमूलक मूल्यांकन से इस बात की पुष्टि होती है कि ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में आईटी को अपनाने वाली विकसित अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में आईटी अधिक चुनौतीपूर्ण सबक होता है । जबकि आईटी को अपनाने के बाद ईएमई में मुद्रास्फीति कम हुई थी, उनका कार्यनिष्पादन विकसित आईटी वाले देशों के अनुभव से श्रेष्ठ नहीं था । मुद्रास्फीति का अपने लक्ष्य से विचलन ईएमई में बड़ा और सामान्य पाया जाता है (फ्रागा, मिनेला और गोल्डफाज, 2003)। मुद्रास्फीति लक्ष्यांक अपने आप में सफलता के लिए पर्याप्त शर्त नहीं होता । उपर्युक्त की दृष्टि से मुद्रास्फीति लक्ष्यांक की विशेषता '' मौद्रिक नीति के स्थिरीकरण के लिए स्वर्ण मानक '' भ्रामक है । वास्तव में, वित्तीय बाजार की उथल-पुथल की हाल की घटना में स्पष्ट मुद्रास्फीति लक्ष्यांक या मूल्य स्थिरता को अपना प्रमुख उद्देश्य मानने वाले केंद्रीय बैंकों को भी मूल्य स्थिरता पर कम जोर देना पड़ा,भले ही उन पर मुद्रास्फीति दबाव बना रहा था । ऐसे केंद्रीय बैंकों को कुछ मामलों में चलनिधि का अंतःक्षेप करना पड़ा था और नीति-दरों को घटाना पड़ा था, जिसके लिए नीति कठोरता की अपनी पूर्व की प्रत्याशाओं को रोकना पड़ा था, क्योंकि उन्हें वित्तीय स्थिरता और वृद्धि पर अधिक जोर देना था ।

1990 के दशक के आरंभ से भारतीय अर्थव्यवस्था का समग्र समष्टिआर्थिक रिकार्ड यह संकेत देता है कि वृद्धि में तेजी आयी है और मुद्रास्फीति में महत्वपूर्ण रूप से कमी हुई है । वर्तमान दशक में अब तक मुद्रास्फीति औसतन 5 प्रतिशत के नीचे रही है। जो इसके पहले के ढाई दशकों में लगभग 8 प्रतिशत की तुलना में काफी नीचे है । पूर्व अधिकृत मौद्रिक और विवेकपूर्ण उपायों ने ऐसी स्वागतयोग्य स्थिति बनायी है कि मुद्रास्फीति में कमी आयी है और वृद्धि में तेजी दिखाई पड़ी है, जबकि वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित हुई है। वास्तव में, आईटी को अपनाने वाली प्रमुख ईएमई की देशपार तुलना यह संकेत देती है कि भारत में वृद्धि उनके बीच सबसे अधिक रही है, जबकि मुद्रास्फीति अपेक्षाकृत नीचे रही है (सारणी 2)। जी-20 और प्रमुख एशियाई देशों के नमूनों के बीच 2000-2007 की अवधि के दौरान भारत में वृद्धि चीन के बाद दूसरे सर्वाधिक उच्च स्तर पर हुई है । भारत में मुद्रास्फीति 1990 के दशक के दौरान प्रचलित मुद्रास्फीति की दर की तुलना में आधी हो गयी है और वह इस समय अनेक देशों की तुलना में कम है । पूरी दुनिया में विकसित देशों और ईएमई में मैक किन्से और कंपनी ऑफ सीईओ द्वारा किये गये सर्वेक्षण में यह पाया गया कि सर्वेक्षण किये गये सभी देशों के बीच भारत में सीईओ का सर्वोच्च अनुपात 40 प्रतिशत है, जिन्होंने यह उम्मीद नहीं की थी कि आने वाले वर्षों में मुद्रास्फीति बढ़ेगी (मैक किन्से क्वार्टरली, 2007) । इस प्रकार, कम से कम कारोबारी नेताओं के बीच यह धारणा बनी प्रतीत होती है कि भारत में मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं को भली-भाँति काबू में रखा गया है । यद्यपि पिछले 3-4 वर्षों में मौद्रिक और ऋण समुच्चयों में औसत से अधिक वृद्धि हुई है, वित्तीय स्थिरता को मौद्रिक एवं विवेकपूर्ण उपायों के न्यायोचित प्रयोग से बनाये रखा गया है । इस प्रकार, भारत में समष्टिआर्थिक प्रबंधन का हाल का रिकार्ड उन ईएमई के बीच भी अनुकरणीय रहा है, जो मुद्रास्फीति का लक्ष्य निर्धारित करते हैं ।

सारणी 2 :वास्तविक जीडीपी वृद्धि और उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति : विभिन्न देशों के बीच तुलना

(वार्षिक औसत प्रतिशत)

	वास्तविक जीडीपी वृद्धि			उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति		
देश	1990-1999	2000-2007	2003-2007	1990-1999	2000-2007	2003-2007
1	2	3	4	5	6	7
विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ						
अर्जेंटीना	4.3	3.4	8.6	253.7	9.0	9.6
ब्राजील	1.7	3.3	3.6	854.8	7.3	7.2
चीन	10.0	9.9	10.6	7.8	1.7	2.6
भारत	**5.7**	**7.0**	**8.5**	**9.6**	**4.5**	**4.8**
इंडोनेशिया	4.3	5.1	5.4	14.4	8.7	8.6
कोरिया	6.3	5.1	4.4	5.7	3.0	2.9
मलयेशिया	7.2	5.4	5.9	3.7	2.0	2.2
मेक्सिको	3.4	2.9	3.2	20.4	5.2	4.1
फिलीपीन्स	2.8	5.0	5.6	9.7	5.0	5.3
रूस	-3.8	6.8	6.9	222.2	14.2	11.0
दक्षिण अफ्रीका	1.4	4.2	4.5	9.9	5.3	4.4
थाईलैंड	5.3	4.9	5.4	5.0	2.5	3.1
तुर्की	3.9	5.1	6.6	76.7	26.8	12.0
विकसित अर्थव्यवस्थाएँ						
आस्ट्रेलिया	3.3	3.3	3.3	2.5	3.2	2.7
कनाडा	2.4	2.9	2.7	2.2	2.3	2.2
फ्रांस	1.9	2.0	1.8	1.9	1.9	2.0
जर्मनी	2.3	1.4	1.4	2.4	1.7	1.7
इटली	1.4	1.3	1.0	4.1	2.4	2.3
जापान	1.5	1.7	2.0	1.2	-0.3	-0.1
युनाइटेड किंगडम	2.1	2.8	2.8	3.3	1.6	1.9
अमेरिका	3.1	2.5	2.8	3.0	2.8	2.9

स्रोत : वर्ल्ड इकॉनॉमिक आइटलुक डाटाबेस, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष।

अब मौद्रिक नीति के लिए चुनौती है मध्यावधि में मुद्रास्फीति को अंतरराष्ट्रीय स्तरों के प्रति कम करना, जबकि वृद्धि की उच्च गति बनाये रखी जायेगी और वित्तीय स्थिरता को सुरक्षित रखा जायेगा ।

II.2 बैंकिंग क्षेत्र

सुधार पश्चात् अवधि में बैंकों ने सुदृढ़ तुलनपत्र वृद्धि का अनुभव परिचालनगत लोच के वातावरण में किया है । सहवर्ती रूप में बैंकों की वित्तीय स्थिति में काफी सुधार हुआ है, पूँजी पर्याप्तता और आस्ति गुणवत्ता, दोनों के संदर्भ में। इसके अतिरिक्त,यह प्रगति विवेकपूर्ण और लेखांकन मानदंडों में अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम व्यवहारों को अपनाये जाने के लिए आधारभूमि तैयार करते समय प्राप्त की गयी है । बढ़ी हुई प्रतिस्पर्द्धा और उत्पादकता लाभ भी सक्रिय प्रौद्योगिकी सुदृढ़ता और नमनीय मानव संसाधन प्रबंधन द्वारा संभव हुए हैं । ये महत्वपूर्ण लाभ उस समय भी प्राप्त हुए हैं, जब हम सामाजिक बैंकिंग की अपनी प्रतिबद्धता का नवीकरण कर रहे हैं, यथा, बैंकिंग प्रणाली के व्यापक विस्तार को बनाये रखना और ऋण को महत्वपूर्ण लेकिन लाभ से वंचित लोगों की ओर निदेशित करना। बैंकिंग प्रणाली की व्यापक पहुँच को, जिसका निर्णय शाखाओं के

विस्तार के आधार पर किया जाता है और ऋण एवं जमाराशियों में वृद्धि यह संकेत देते हैं कि वित्तीय सुदृढ़ता बनी हुई है (मोहन, 2006ए)।

देयता पक्ष में, जमाराशियाँ कुल देयताओं के लगभग 80 प्रतिशत के लिए जिम्मेवार बनी हुई हैं, जबकि आस्ति पक्ष में, ऋण एवं अग्रिमों तथा निवेशों के अंशों ने उल्लेखलीय चक्रों को देखा है, जो बैंकों के निवेश अधिमानों के अतिरिक्त अर्थव्यवस्था में वृद्धि चक्र को प्रतिबिंबित करते हैं । इस संबंध में, जबकि ऋण एवं अग्रिमों के अंश में 1990 के दशक के दूसरे आधे हिस्से में औद्योगिक मंदी और विवेकपूर्ण मानदंडों को कठोर बनाये जाने के चलते कमी आयी, बैंकों के ऋण संविभाग में वर्ष 2003-07 की अवधि में तीव्र वृद्धि देखी गयी है।

वाणिज्यिक बैंकों की समग्र पूँजीगत स्थिति में सुधार अवधि के दौरान उल्लेखनीय सुधार हुआ है (सारणी 3)। दृष्टांत के रूप में, मार्च 2007 क़े अंत में भारत में परिचालनरत सभी 81 अनुसूचित वाणिज्य बैंकों ने सीआरएआर 9 प्रतिशत या उससे ऊपर बनाये रखा है, जबकि बासल I मानदंड 8 प्रतिशत था । भारतीय बैंकिंग प्रणाली के लिए जोखिम भारित परिसंपत्ति की तुलना में पूँजी का अनुपात इस समय 13 प्रतिशत है । जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का प्रारंभ में समुन्नत पूँजीकरण सरकार द्वारा इन बैंकों के पुनः पूँजीकरण के लिए पूँजी देकर किया गया था, बाद में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को अनुमति दी गयी कि वे इक्विटियाँ जारी कर बाजार से निधियाँ जुटा सकते हैं, लेकिन शर्त यह होगी कि 51 प्रतिशत सरकारी स्वामित्व को बनाये रखा जायेगा । इसके परिणामस्वरूप सरकारी क्षेत्र के बैंकों का स्वामित्व अब भली-भाँति विविधीकृत है ।

अनर्जक आस्तियों के संबंध में विवेकपूर्ण मानदंडों को कठोर बनाये जाने के बावजूद बैंकों की परिणामी मापित आस्ति गुणवत्ता में काफी सुधार हुआ है, क्योंकि अनर्जक ऋणों (एनपीएल) का अंश (कुल अग्रिमों और आस्तियों, दोनों के अनुपात के रूप में) 1990 के दशक के मध्य से काफी और सुसंगत रूप से कम हुआ है । वस्तुतः निवल अग्रिमों में निवल एनपीएल का अनुपात, जो भारत में 1.0 प्रतिशत पर है, अब अनेक विकसित अर्थव्यवस्थाओं में मौजूद अनुपात से तुलनीय है (सारणी 4)। ऋण मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार, कारोबार चक्र का उलटना, एनपीएल के समाधान के लिए नये उपक्रमण (जिसमें वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति ब्याज प्रवर्तन (एसएआरएफएईएसआइ) अधिनियम का प्रख्यापन शामिल है), और एनपीएल के लिए अधिक प्रावधानन तथा उनका बट्टेखाते लिखा जाना, जो अधिक लाभप्रदता द्वारा संभव हुआ, इन सबों ने वृद्धिशील एनपीएल को कम करने में योगदान किया है ।

सारणी 3: जोखिम भारित पूँजी पर्याप्तता के अनुसार वाणिज्यिक बैंकों का वितरण

(बैंकों की संख्या)

अंत-मार्च	पूँजी पर्याप्तता				
	4 प्रतिशत से कम	4-9 प्रतिशत के बीच*	9-10 प्रतिशत के बीच @	10 प्रतिशत से अधिक	कुल
1	2	3	4	5	6
1996	8	9	33	42	92
2001	3	2	11	84	100
2007	–	–	2	79	81

* : 1999-2000 के पूर्व 4-8 प्रतिशत से संबंधित है।
@ : 1999-2000 के पूर्व 8-10 प्रतिशत से संबंधित है।
स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

सारणी 4 : अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के अनर्जक ऋण (एनपीएल)

(प्रतिशत)

अंत-मार्च	सकल एनपीएल/ सकल अग्रिम	सकल एनपीएल/ आस्तियाँ	निवल एनपीएल/ निवल अग्रिम	निवल एनपीएल/ आस्तियाँ
1	2	3	4	5
1996-97	15.7	7	8.1	3.3
1997-98	14.4	6.4	7.3	3.0
1998-99	14.7	6.2	7.6	2.9
1999-00	12.7	5.5	6.8	2.7
2000-01	11.4	4.9	6.2	2.5
2001-02	10.4	4.6	5.5	2.3
2002-03	8.8	4.0	4.4	1.9
2003-04	7.2	3.3	2.8	1.2
2004-05	5.2	2.5	2.0	0.9
2005-06	3.1	1.8	1.2	0.7
2006-07	2.4	1.5	1.0	0.6

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

कार्यकुशलता लाभ परिचालन व्यय को कुल आस्तियों के अनुपात के रूप में नियंत्रित रखे जाने में प्रतिबिंबित होते हैं (सारणी 5)। ये लाभ भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी के संस्थापन और कोटि-उन्नयन पर भारी खर्च किये जाने और सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा अपने कुल स्टाफ के लगभग 12 प्रतिशत स्टाफ की स्वैच्छिक समय-पूर्व सेवानिवृत्ति पर किये गये भारी खर्च के बावजूद प्राप्त हुए हैं।

सारणी 5 : अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की आमदनी और खर्च

(बिलियन रु.)

वर्ष	कुल आस्तियाँ	कुल आमदनी	ब्याज आय	कुल खर्च	ब्याज व्यय	स्थापना खर्च	निवल ब्याज आय
1	2	3	4	5	7	8	9
1969	68	4 (6.2)	4 (5.3)	4 (5.5)	2 (2.8)	1 (2.1)	2 (2.5)
1980	582	42 (7.3)	38 (6.4)	42 (7.2)	27 (4.7)	10 (1.7)	10 (1.8)
1991	3,275	304 (9.3)	275 (8.4)	297 (9.1)	190 (5.8)	76 (2.3)	86 (2.6)
2000	11,055	1,149 (10.4)	992 (9.0)	1,077 (9.7)	690 (6.2)	276 (2.5)	301 (2.7)
2005	22,746	1,902 (8.1)	1,558 (6.6)	1,693 (7.2)	891 (3.8)	501 (2.1)	667 (2.8)
2006	25,865	2,208 (7.9)	1,854 (6.7)	1,962 (7.0)	1,072 (3.9)	592 (2.1)	783 (2.8)
2007	31,854	2,762 (8.0)	2,373 (6.9)	2,450 (7.1)	1,440 (4.2)	663 (1.9)	933 (2.7)

टिप्पणी : कोष्ठकों में दिये गये आँकड़े कुल आस्तियों के अनुपात हैं।
स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

बैंकों की कार्यकुशलता और लाभप्रदता अधिक प्रतिस्पर्द्धा के माध्यम से बढ़ाने के उद्देश्य के अनुकूल वाणिज्यिक बैंकों की कुल आस्तियों में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के अंश में सुसंगत रूप से गिरावट आयी है । फिर भी, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक प्रतिस्पर्द्धा की नयी चुनौतियों के प्रति प्रतिक्रिया दिखाते प्रतीत होते हैं, जैसाकि बैंकिंग क्षेत्र के समग्र लाभ में उनके बढ़े हुए अंश में प्रतिबिंबित होता है ।इससे यह पता चलता है कि परिचालनगत नमनीयता के साथ सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक अपेक्षाकृत कारगर ढंग से निजी क्षेत्र के बैंकों और विदेशी बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा कर रहे हैं । बैंकिंग प्रणाली की कुल आय और आस्तियों में भारत के निजी क्षेत्र के बैंकों, खासकर 1990 के दशक में स्थापित नये निजी क्षेत्र बैंकों, का हिस्सा 1990 के दशक के मध्य से काफी बढ़ा है (सारणी 6) ।

भारतीय निजी क्षेत्र के बैंकों, खासकर नये निजी क्षेत्र के बैंकों ने 1990 के दशक के मध्य से अपनी आय और आस्ति आकार को बढ़ाये जाने के संदर्भ में तीव्र गति से प्रगति की है । शाखा-विस्तार के संदर्भ में निजी क्षेत्र के बैंकों की वर्ष 2002-07 की अवधि में चक्रवृद्धि दर सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की तुलना में लगभग तीन गुना और सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की तुलना में चार गुना अधिक रही है (सारणी 7) । निजी क्षेत्र के बैंकों में चार बड़े बैंकों, यथा, सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब, एचडीएफसी बैंक, आइसीआइसीआइ बैंक और यूटीआई/ एक्सिस बैंक, ने शाखा-विस्तार में प्रतिवर्ष 16-46 प्रतिशत की यौगिक वृद्धि दर से बढ़ोतरी दर्ज की है। जबकि समूह के रूप में निजी क्षेत्र के बैंकों ने अपने स्टाफ में प्रतिवर्ष 24 प्रतिशत की यौगिक वृद्धि दर दर्ज की है, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के स्टाफ की संख्या में

सारणी 6 : बैंक समूहवार हिस्से : चुनिंदा संकेतक

(प्रतिशत)

मद	1995-96	2000-01	2004-05	2005-06	2006-07
1	2	3	4	5	6
सार्वजनिक क्षेत्र बैंक					
आय	82.5	78.4	75.6	72.4	68.4
व्यय	84.2	78.9	75.8	73.0	68.9
कुल आस्तियाँ	84.4	79.5	74.4	72.3	70.5
निवल लाभ	-39.1 @	67.4	73.3	67.3	64.6
सकल लाभ	74.3	69.9	75.9	69.8	64.1
नये निजी क्षेत्र बैंक					
आय	1.5	5.7	11.8	14.4	17.8
व्यय	1.3	5.5	11.4	14.1	17.9
कुल आस्तियाँ	1.5	6.1	12.9	15.1	16.9
निवल लाभ	17.8	10.0	15.0	16.7	17.1
सकल लाभ	2.5	6.9	10.7	13.8	16.7
विदेशी बैंक					
आय	9.4	9.1	7.0	8.0	9.0
व्यय	8.3	8.8	6.6	7.4	8.3
कुल आस्तियाँ	7.9	7.9	6.8	7.2	8.0
निवल लाभ	79.8	14.8	9.7	12.5	14.7
सकल लाभ	15.6	15.7	9.0	12.2	14.6

@ : सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने एक समूह के रूप में 1995-96 के दौरान निवल हानियाँ दर्ज कीं ।
स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

सारणी 7 : निजी क्षेत्र के बैंकों का परिचालन : प्रगति

मद	2002-03	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07	यौगिक वृद्धि (प्रतिशत प्रतिवर्ष) (2006-07/ 2002-03)
1	2	3	4	5	6	7
शाखाओं की संख्या						
सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब	62	63	77	242	279	45.6
एचडीएफसी बैंक	215	295	446	515	638	31.2
आइसीआइसीआइ बैंक	392	419	515	569	713	16.1
यूटीआई बैंक/एक्सिस बैंक	137	185	250	352	501	38.3
सभी निजी क्षेत्र बैंक	5,592	5,950	6,453	6,813	7,363	7.1
सभी सार्वजनिक क्षेत्र बैंक	47,963	48,299	48,970	49,817	51,392	1.7
सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंक	53,768	54,474	55,669	56,893	59,031	2.4
कर्मचारियों की संख्या						
सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब	945	1112	1,374	4,471	14,458	97.8
एचडीएफसी बैंक	4,791	5673	9,030	14,878	21,477	45.5
आइसीआइसीआइ बैंक	11,544	13,609	18,029	25,384	33,321	30.3
यूटीआई बैंक/एक्सिस बैंक	2,338	3,447	4,761	6,553	9,980	43.7
सभी निजी क्षेत्र बैंक	59,374	81,120	90,530	110,505	139,285	23.8
सभी सार्वजनिक क्षेत्र बैंक	757,251	752,627	738,110	744,333	729,172	-0.9
सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंक	828,328	847,945	856,671	876,955	896,307	2.0
निवल लाभ (बिलियन रुपये)						
सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब	-0	-1	0	1	1	—
एचडीएफसी बैंक	4	5	7	9	11	31.0
आइसीआइसीआइ बैंक	12	16	20	25	31	26.7
यूटीआई बैंक/एक्सिस बैंक	2	3	3	5	7	36.1
सभी निजी क्षेत्र बैंक	29	35	35	50	65	22.1
सभी सार्वजनिक क्षेत्र बैंक	123	16	154	165	201	13.1
सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंक	170	223	210	246	312	16.4
जमाराशियाँ (बिलियन रुपये)						
सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब	28	30	35	94	149	51.3
एचडीएफसी बैंक	224	304	434	558	683	32.2
आइसीआइसीआइ बैंक	482	681	998	1,651	2,305	47.9
यूटीआई बैंक/एक्सिस बैंक	170	210	317	401	588	36.4
सभी निजी क्षेत्र बैंक	2069	2,686	3,146	4,285	5,520	27.8
सभी सार्वजनिक क्षेत्र बैंक	10,794	12,268	14,365	16,225	19,942	16.6
सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंक	14,045	15,755	18,376	21,647	26,970	17.7
अग्रिम (बिलियन रुपये)						
सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब	13	16	22	65	1,122	70.9
एचडीएफसी बैंक	118	178	256	351	470	41.4
आइसीआइसीआइ बैंक	533	627	914	1,462	1,959	38.5
यूटीआई बैंक/एक्सिस बैंक	72	94	156	223	369	50.5
सभी निजी क्षेत्र बैंक	1,377	1,704	2,213	3,130	4,148	31.7
सभी सार्वजनिक क्षेत्र बैंक	5,493	6,327	8,542	11,063	14,401	27.2
सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंक	7,600	8,636	11,508	15,168	19,812	27.1

टिप्पणी : सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब का गठन अक्तूबर 2005 में सेंचुरियन बैंक के बैंक ऑफ पंजाब के साथ विलय के परिणामस्वरूप किया गया था । वर्ष 2005-06 और 2006-07 के लिए सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब से संबंधित आँकड़ों में संयुक्त प्रतिष्ठान के आंकड़े प्रतिबिंबित होते हैं, जबकि इससे पूर्व के वर्षों के आँकड़े केवल सेंचुरियन बैंक से संबंधित हैं ।

स्रोत : 1. अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के वार्षिक लेखे, 1979-2004 । भारतीय रिज़र्व बैंक ।
2. बैंकों की प्रोफाइल, 2006-07 । भारतीय रिज़र्व बैंक ।

इसी अवधि में कमी आयी है, जो अन्य बातों के साथ-साथ, प्रौद्योगिकी एवं कंप्यूटरीकरण के अधिक उपयोग द्वारा सुसाध्य बनायी गयी पुनर्संरचना को प्रतिबिंबित करती है । पूँजी और आरक्षित निधियों और अधिशेष की वृद्धि के संदर्भ में नये निजी क्षेत्र बैंकों ने 30-68 प्रतिशत की सीमा में वार्षिक वृद्धि दर्ज की है, जबकि जमाराशियाँ और अग्रिम क्रमशः 32.51 प्रतिशत और 39-71 प्रतिशत तक बढ़े हैं । निवल लाभ में प्रतिवर्ष यौगिक वृद्धि दर 27-36 प्रतिशत दर्ज की गयी है । इन सभी पॅरामीटरों के संदर्भ में नये निजी क्षेत्र बैंक मौजूदा निजी क्षेत्र बैंकों की तुलना में तेजी से बढ़े, जैसाकि उम्मीद की गयी थी ।

हाल में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा शाखा लाइसेंसीकरण के संबंध में कुछ चर्चा उठी थी कि यह प्रतिस्पर्द्धा को और नये बैंकों की वृद्धि को रोक सकता था । ये आँकड़े प्रमुख निजी क्षेत्र बैंकों की उच्च वृद्धि को प्रदर्शित करते हैं और इस पर बहस हो सकती है कि क्या उनकी विवेकपूर्ण गुणवत्ता और उनके तुलनपत्र की अखंडता को बिना हानि पहुँचाये इनका और तेजी से विस्तार हुआ होता ।

सबसे अधिक उत्साहजनक यह बात है कि विविध उत्पादकता संकेतकों के संदर्भ में भारतीय बैंकिंग प्रणाली की उत्पादकता में बहुत महत्वपूर्ण सुधार हुआ है (मोहन, 2006ए)। ये दो कारकों द्वारा प्रेरित हो सकते हैं: प्रौद्योगिकी सुधार, जो उत्पादन संभावनाओं का सुधार करता है और संक्रामक प्रभाव, क्योंकि बैंकों के बीच दृश्य दबाव उन्हें बाध्य करता है कि वे उत्पादकता का स्तर बढ़ायें । यहाँ नये कारोबार व्यवहार, नये दृष्टिकोण और नये निजी बैंकों द्वारा आरंभ किये गये कारोबार विस्तार सर्वाधिक महत्व के रहे हैं ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पिछले दशक में या ऐसी ही अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के कार्यनिष्पादन में महत्वपूर्ण सुधार परिलक्षित हुआ है, जिसे सुसाध्य बनाया है 1990 के दशक के आरंभ में चरणबद्ध रूप में शुरू किये गये व्यापक सीमा वाले वित्तीय क्षेत्र के सुधारों ने ।अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम व्यवहारों और मानदंडों की क्रमिक शुरुआत, पर्यवेक्षकीय व्यवहारों में परिष्करण, उच्च ऋण वृद्धि दर्शाने वाले क्षेत्रों के संबंध में जोखिम भार/प्रावधानन मानदंडों को कठोर बनाया जाना, पूँजी बाजार से पूँजी जुटाकर बृहत्तर बाजार अनुशासन कायम करना तथा स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्धता, ब्याज दर अविनियमन और सांविधिक पूर्व-क्रय अधिकार को घटाया जाना उन प्रमुख कारकों में हैं, जिनके चलते बेहतर क़ार्यनिष्पादन संभव हो पाया है । सहवर्ती रूप में नयी पीढ़ी के निजी क्षेत्र के बैंकों की सफलतापूर्वक शुरूआत करके घरेलू बैंकिंग क्षेत्र में और अधिक प्रतिस्पर्द्धा को प्रेरित किया गया है । नये बैंकों के तुलनपत्र में सुदृढ़ वृद्धि के बावजूद बैंकिंग क्षेत्र ने उल्लेखनीय स्थिरता का प्रदर्शन किया है ।यद्यपि कुछ नये निजी क्षेत्र बैंकों में दुर्बलता के कुछ दृष्टांत मिले हैं, ऐसे बैंकों का सुदृढ़ बैंकों में विलय या उनमें नयी पूँजी लगाकर और स्वामित्व में स्वेच्छा या अनिच्छा के आधार पर परिवर्तन के लिए किये गये पूर्व-अधिकृत उपायों ने घरेलू बैंकिंग क्षेत्र की सुदृढ़ता में योगदान किया है, जमाकर्ताओं में विश्वास उत्पन्न किया है और समग्र वित्तीय स्थायित्व बनाये रखने में समर्थ बनाया है । काफी सुधार होने के बाद भी घरेलू बैंकिंग क्षेत्र और सुदृढ़ बनाना होगा, ताकि वह बृहत्तर बाह्य प्रतिस्पर्द्धा और वित्तीय नवोन्मेष एवं संपूर्ण पूँजी लेखा परिवर्तनीयता का सामना कर सके ।

II.3 वित्तीय बाजार

वित्तीय क्षेत्र सुधारों का सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रभाव भारत में वित्तीय बाजारों के विविध खंडों के विकास में दृष्टिगोचर होता है । 1990 के दशक के आरंभ से किये

गये सुधारों ने एक ऐसी व्यवस्था की अगुआई की है, जिसकी विशेषता है बाजार निर्धारित ब्याज और विनिमय दरें, मौद्रिक नीति की मूल्य आधारित लिखतें, चालू खाता परिवर्तनीयता, महत्वपूर्ण पूँजी लेखा उदारीकरण और स्पंदनशील सरकारी प्रतिभूति और पूँजी बाजार । डेरिवेटिव लिखतों को चरणबद्ध ढंग से सावधानीपूर्वक आरंभ किया गया है, उत्पाद विविधता और अधिक महत्वपूर्ण रूप से जोखिम प्रबंधन साधन, दोनों के लिए। इन सभी गतिविधियों ने विविध वित्तीय बाजार खंडों में कीमत अनुसंधान प्रक्रिया को सुसाध्य बनाया है ।

व्यापार परिमाण और बाजार चलनिधि में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है (सारणी 8)। दृष्टांत के रूप में मुद्रा बाजार में औसत दैनिक कुल कारोबार, जो 1997-98 में 427 बिलियन रुपये का होता था, 2006-07 तक बढ़कर 888 बिलियन रुपये हो गया है । चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) के अंतर्गत किये गये परिचालन नीति-दरों द्वारा निर्धारित कारीडोर के भीतर ओवरनाइट दरों को परिचालित करने में समर्थ हुए हैं । एलएएफ के अंतर्गत रिज़र्व बैंक चलनिधि का अवशोषण करता है(रिवर्स रेपो और चलनिधि का अंतःक्षेप (रेपो) करता है,जो चलनिधि की स्थिति पर निर्भर करता है और मौद्रिक नीति स्वरूप से संगति रखता है । एलएएफ के संचालन के लिए, जिसके अंतर्गत केंद्रीय बैंक बैंकों के लिए दैनिक नीलामी करता है, रिज़र्व बैंक द्वारा समय-समय पर निर्धारित नियत रिवर्स रेपो/रेपो दरों में परिवर्तन भारतीय अर्थव्यवस्था में ब्याज दर संकेतन के लिए मुख्य लिखत के रूप में उभरे हैं ।

विदेशी मुद्रा बाजार में अंतर-बैंक कुल कारोबार 2000-01 और 2006-07 के बीच चार गुना बढ़कर 840 बिलियन रुपये हो गया है । विदेशी मुद्रा बाजार में औसत दैनिक कुल कारोबार (अंतर-बैंक और वणिक), जो 1997-98 में 5 बिलियन अमरीकी डालर था, 2006-07 में बढ़कर 23 बिलियन अमरीकी डालर हो गया । भारतीय रुपये की विनिमय दर ने हाल के वर्षों में महत्वपूर्ण दुतरफा उतार-चढ़ाव का प्रदर्शन किया है । विदेशी मुद्रा बाजार में कार्यकुशलता में भी सुधार हुआ

सारणी 8 : भारत में वित्तीय बाजारों की गहनता - औसत दैनिक कुल कारोबार

(बिलियन रुपये)

वर्ष	मुद्रा बाजार*	सरकारी प्रतिभूति बाजार	विदेशी मुद्रा बाजार #	इक्विटी बाजार (नकदी खंड) **	इक्विटी बाजार (डेरिवेटिव खंड - एनएसई)
1	2	3	4	5	6
1991-92@	66	4	अनु.	अनु.	अनु.
2000-01	427	28	212	93	0.1
2001-02	655	63	232	33	4
2002-03	768	71	242	37	18
2003-04	287	84	307	63	84
2004-05	385	48	400	66	101
2005-06	600	36	564	95	192
2006-07	888	49	840	118	298

* : इसमें मांग मुद्रा, सूचना पर देय मुद्रा, मीयादी मुद्रा, सीबीएलओ और रेपो बाजार शामिल हैं ।
\# : केवल अंतर-बैंक कुल कारोबार
@ : जी-सेक और इक्विटी बाजार के लिए आँकड़े वर्ष 1995-96 से संबंधित हैं ।
** : इसमें बीएसई और एनएसई, दोनों शामिल हैं ।
एन.ए. : अनुपलब्ध

है, जैसाकि बिड-आस्क-स्प्रेड्स में गिरावट में प्रतिबिंबित होता है ।

सरकारी प्रतिभूति बाजार में दीर्घावधि प्रतिभूतियों के निर्गम ने आय-वक्र के विकास को 30 वर्षीय परिपक्वता अवधि तक समर्थ बनाया है । सरकारी प्रतिभूति बाजार में 2004-05 और 2005-06 में कुल कारोबार में गिरावट का कारण प्रतिभागियों, यथा, बीमा कंपनियों, जो अब सरकारी प्रतिभूतियों, खासकर लंबी परिपक्वता वाली प्रतिभूतियों का काफी बड़ा हिस्सा रखती हैं, की प्रतिभूतियों को 'खरीदो और रोक कर रखो' की प्रवृत्ति रहा है । इसके अतिरिक्त वर्ष 2004 के अंत में आरंभ किये गये कतिपय विनियामक परिवर्तनों ने, जो बैंकों को यह अनुमति देते थे कि वे अपने निवेश संविभाग का बड़ा हिस्सा 'परिपक्वता तक धारित' (एचटीएम) कोटि में रखें, क्रय-विक्रय के लिए प्रयुक्त संविभाग का अनुपात घटा दिया, जिसके चलते जी-सेक क्रय-विक्रय का परिमाण प्रभावित हुआ। इस गिरावट का एक कारण इस अवधि में ब्याज दरों में की गयी वृद्धि भी रहा, जिसने बैंकों और अन्य बाजार प्रतिभागियों को प्रेरित किया कि वे प्रतिभूतियों को रोक रखें, न कि उनका क्रय-विक्रय करें, ताकि व्यापार घाटा बचाया जा सके । बाजारों को अर्थसुलभ और सक्रिय बनाये रखने के लिए रिज़र्व बैंक ने हाल में पात्र प्रतिभागियों के बीच सरकारी प्रतिभूतियों की मंदड़िया बिक्री करने की अनुमति दी है और 'जब जारी' खंड में क्रय-विक्रय की अनुमति दी है, लेकिन ये सुविधाएँ अभी तक अधिक सक्रिय नहीं हुई हैं । ऐसे प्रयास भी किये जा रहे हैं कि मौजूदा प्रतिभूतियों के सक्रिय समेकन के माध्यम से चलनिधि में वृद्धि की जाये।

डेरिवेटिव बाजार भी पिछले दो वर्षों के दौरान स्पंदनशील रहा है । कुल बकाया कल्पित मूलधन राशि मार्च 2005 और जून 2007 के बीच तिगुनी बढ़ गयी है, जिसकी अगुआई ब्याज दर से संबंधित संविदाओं में महत्वपूर्ण तेजी ने की । इस अवधि में जबकि ब्याज दर से जुड़ी संविदाओं के अंतर्गत कल्पित राशि चार गुनी हो गयी, विदेशी मुद्रा संविदाओं की राशि तिगुनी हुई (सारणी 9) । वर्ष 2006 में कतिपय वैधानिक परिवर्तनों ने ओटीसी डेरिवेटिव संविदाओं को स्पष्ट विधिक युक्तियुक्तता प्रदान की, जो पूर्व में कुछ-कुछ अस्पष्ट होते थे ।

सरकार एवं भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड रिज़र्व बैंक के साथ मिल कर कंपनी ऋण बाजार को सक्रिय बनाने के लिए कदम उठा रहे हैं । जैसाकि अन्यत्र अनुभव किया गया है, विविध वित्तीय बाजारों के बीच कंपनी ऋण बाजार का विकास अनेक कारणों से सर्वाधिक कठिन कार्य रहा है । पेंशन निधि और बीमा उद्योग का विस्तार होने का प्रगामी परिणाम एक बड़े वित्तीय निवेशक आधार का अस्तित्व होगा, जो वित्तीय बाजारों के समग्र विस्तार में मददगार होगा, खासकर कंपनी ऋण बाजार के विस्तार में।

सारणी 9 : बकाया डेरिवेटिव : कल्पित मूलधन राशि

(बिलियन रुपये)

क्रम सं.	वर्णन	मार्च 2005	मार्च 2006	मार्च 2007	जून 2007
1	2	3	4	5	6
1	**विदेशी मुद्रा संविदाएँ (बकाया)**	**13,013**	**17,285**	**29,254**	**37,625**
2	वायदा विदेशी मुद्रा संविदाएँ	12,487	15,286	24,653	32,044
3	खरीदे गये करेंसी ऑप्शन्स	526	1,998	4,601	5,581
4	**फ्यूचर्स**	**732**	**1,430**	**2,290**	**2,068**
5	**ब्याज दर से संबंधित संविदाएँ**	**13,119**	**21,842**	**41,958**	**54,998**
6	*जिनमें से :* एकल करेंसी ब्याज दर स्वैप्स	12,817	21,530	41,597	54,590
7	**कुल - संविदाएँ/डेरिवेटिव**	**26,864**	**40,558**	**73,502**	**94,691**

टिप्पणी : आँकड़े अनुसूचित वाणिज्य बैंकों से संबंधित हैं ।

स्पष्ट रूप से ऐसा आभास होता है कि भारत में बांडों, मुद्रा और डेरिवेटिवों के लिए सुपरिचालित, सुदृढ़, अर्थसुलभ और भली-भाँति एकीकृत बाजार मौजूद है, जो लोगों की पूर्व धारणा के विपरीत है । वित्तीय बाजारों के विविध खंडों में व्यापार परिमाण में सामान्यतः महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गयी है । यह उल्लेखनीय है कि अप्रैल 2004 और अप्रैल 2007 के बीच विदेशी मुद्रा बाजार के कुल कारोबार में हुई वृद्धि अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक (बीआईएस) द्वारा कराये गये विदेशी मुद्रा एवं डेरिवेटिव बाजार कार्यकलाप के त्रिवार्षिक केंद्रीय बैंक सर्वेक्षण में शामिल 54 देशों के बीच सबसे अधिक हुई थी । सर्वेक्षण के अनुसार भारत में औसत दैनिक कुल कारोबार 5 गुना बढ़कर अप्रैल 2007 में 34 बिलियन अमरीकी डालर का हो गया, जबकि अप्रैल 2004 में यह 7 बिलियन अमरीकी डालर का था; इसी अवधि के दौरान विश्व का कुल कारोबार 66 प्रतिशत तक बढ़ा, जो 2.4 ट्रिलियन अमरीकी डालर से बढ़कर 4.0 ट्रिलियन अमरीकी डालर का हो गया। इन प्रवृत्तियों को प्रतिबिंबित करते हुए विश्व के विदेशी मुद्रा बाजारों के कुल कारोबार में भारत का हिस्सा तिगुना बढ़कर अप्रैल 2004 के 0.3 प्रतिशत से अप्रैल 2007 में 0.9 प्रतिशत हो गया । उपर्युक्त की दृष्टि से ऐसी टिप्पणियाँ, जो अक्सर की जाती हैं कि वित्तीय बाजार अविद्यमान हैं, वे निश्चय ही भ्रामक हैं । इसके अतिरिक्त, अनुभवमूलक साक्ष्य बृहत्तर बाजार एकीकरण की ओर इशारा करते हैं (मोहन, 2007सी)। सरकारी प्रतिभूति बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार, ओटीसी ब्याज दर डेरिवेटिवों और इसी तरह के अन्य में वस्तुतः काफी विकास हुआ है । कंपनी ऋण बाजार वस्तुतः अपनी शैशवावस्था में है; और विविध एक्सचेंज-ट्रेडेड डेरिवेटिव बाजारों के विकास के लिए और अधिक प्रयास किये जाने होंगे ।

तथापि यह मानना होगा कि वित्तीय बाजार अक्सर भेड़चाल वाले व्यवहार और संक्रामकता से नियंत्रित होते हैं । अविनियमन, उदारीकरण, वित्तीय समूहन का उद्भव और वित्तीय बाजारों के वैश्वीकरण वित्तीय स्थायित्व के लिए बढ़ती जोखिम उत्पन्न करते हैं । इस संबंध में यह जोर देकर कहा जा सकता है कि इक्विटी बाजार की अस्थिरता की तुलना में करेंसी और बांड बाजारों में अस्थिरता होने का रोजगार, उत्पादन और वितरण संबंधी परिणाम काफी अधिक प्रतिकूल होगा । मुद्रा और बांड बाजारों का समय पूर्व उदारीकरण किये जाने का परिणाम बड़े और अस्थिर पूँजी अंतर्वाह में होगा, जो संभवत समष्टिआर्थिक और मौद्रिक प्रबंधन के लिए जटिलताएँ बढ़ा देगा । इसके अतिरिक्त वित्तीय बाजारों में अत्यधिक उतार-चढ़ाव और अस्थिरता होना अंतर्निहित मूल्य को आच्छादित कर लेगा और भ्रामक संकेत देगा, जैसाकि विकसित बाजारों में होता देखा गया है, जिसके चलते दक्ष कीमत अनुसंधान में बाधा आयेगी (मोहन, 2006सी) । चूँकि भारत में आर्थिक एजेंटों के बड़े खंडों के पास पर्याप्त समुत्थानशक्ति नहीं होगी कि वे करेंसी और मुद्रा बाजार में अस्थिरता को बरदाश्त कर सकें, रिज़र्व बैंक का नीतिगत दृष्टिकोण यह रहा है कि हमेशा अत्यधिक सतर्क रहा जाये और वित्तीय बाजारों में अस्थिरता के आरंभिक संकेत मिलते ही सक्रियतापूर्वक आवश्यक कार्रवाई की जाये ।

1990 के दशक के आरंभ से हुई प्रगति के बावजूद रिज़र्व बैंक यह मानता है कि घरेलू वित्तीय बाजारों को और अधिक विकसित होने की आवश्यकता है, खासकर भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि की गति में हाल में आयी तेजी के समर्थन के लिए और संपूर्ण लेखा परिवर्तनीयता की ओर परिकल्पित कार्रवाई के संदर्भ में । भारत के अनुभव यह दर्शाते हैं कि बाजारों के विकास का कार्य दुष्कर और समय-सापेक्ष होता है , जिसके लिए सजग नीति संबंधी कार्रवाई और कारगर कार्यान्वयन अपेक्षित होता है । भौतिक आधारभूत संरचना और आपूर्ति लोच के संदर्भ में वास्तविक क्षेत्र में विकास हुए बिना वित्तीय

क्षेत्र संसाधनों का त्रुटिपूर्ण आबंटन कर सकता है, संभाव्य रूप से बुदबुद उत्पन्न कर सकता है और संभवतः जोखिम बढ़ा सकता है ।अतः वित्तीय क्षेत्र के सुधारों का अनुपूरक संबंध भारत में वास्तविक क्षेत्र में सुधारों की गति और प्रक्रिया के साथ है ।

स्थायित्व को अधिक महत्व देते हुए, खासकर आबादी के एक बड़े भाग के न्यून आय-स्तर को देखते हुए अब तक अपनाये गये वित्तीय बाजार के सावधान एवं सतर्क दृष्टिकोण का अनुसरण आने वाले वर्षों में करना होगा । आगे और प्रगति के लिए उठाये जाने वाले कदम सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में आवश्यक विशेषज्ञता के विकास, निजी क्षेत्र के बैंकों और विदेशी बैंकों का आगे विस्तार किये जाने पर निर्भर होंगे । हम घरेलू वित्तीय बाजार के विविध खंडों के आगे विकास किये जाने की आवश्यकता को समझते हैं, जिससे विविध बाजार प्रतिभागियों को बेहतर जोखिम प्रबंधन में मदद मिलेगी । विविध जोखिम प्रबंधन साधनों की मांग बढ़ने की उम्मीद है, खासकर भविष्य में विनिमय दरों और ब्याज दरों में संभावित बड़े उतार-चढ़ाव की दृष्टि से । बाजार प्रतिभागियों को उपलब्ध लिखतों की सीमा को विस्तारित किये जाने की आवश्यकता को मानते हुए रिज़र्व बैंक ने देश में ऋण डेरिवेटिवों को आरंभ करने के लिए प्रारूप दिशानिर्देश प्रस्तुत किये हैं । अभी हाल ही में, भारत में मुद्रा फ्यूचर्स आरंभ किये जाने के संबंध में एक प्रारूप रिपोर्ट पब्लिक डोमेन में रखी गयी है, ताकि उस पर टिप्पणियाँ और प्रतिसूचना मिले; और ब्याज दर फ्यूचर्स आरंभ करने का काम चल रहा है ।

सारांशतः यह व्यापक रूप से माना जाता है कि पिछले दशक में भारतीय वित्तीय क्षेत्र का रूपांतरण एक उचित रूप में परिष्कृत, विविधीकृत और समुत्थानशील प्रणाली के रूप में हुआ है, जो विविध प्रकार की वित्तीय सेवाएँ दक्षतापूर्वक और लाभप्रदता के साथ प्रदान कर रही है और जिसमें ऐसे वित्तीय बाजार खंडों की झलक मिलती है, जिनमें वित्तीय संस्थाएँ बढ़ते हुए अविनियमन तथा अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा के वातावरण में परिचालनगत एवं प्रयोजनमूलक स्वायत्तता के साथ भाग ले सकती हैं । वास्तविक अर्थव्यवस्था में वृद्धि की गति यह संकेत करती है कि वित्तीय प्रणाली ने अर्थव्यवस्था की समग्र आवश्यकताओं को भली-भाँति पूरा किया है । इस अवधि के दौरान जबकि वैश्विक वित्तीय वातावरण नयी लिखतों और प्रतिभागियों तथा संचार प्रौद्योगिकी में तीव्र प्रगति होने, जिसने दुनिया भर में बाजारों को एकीकृत किया है, के परिणामस्वरूप अधिक जोखिमपूर्ण हो गया है, भारतीय सुधार प्रक्रिया की अन्यतम विशेषता यह रही है कि इसे इस उद्देश्य के साथ संस्थापित किया गया है कि यह वृद्धि की गति को बनाये रखेगी और उसमें तेजी लायेगी, जबकि जोखिम को थाम लेगी और वित्तीय स्थायित्व को सुरक्षा प्रदान करेगी ।

III. अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में भारतीय सुधार के नतीजे

कुछ टिप्पणीकारों ने वित्तीय क्षेत्र सुधारों के प्रति भारतीय दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए कहा है कि यह विभिन्न देशों के अनुभव के संदर्भ में अस्पष्ट, भीरु और रूढ़िवादी है और उन्होंने अधिक बुलंद एवं सशक्त उपायों की वकालत की है, ताकि इस संक्रमण को उच्चतर वृद्धि तक गतिशील किया जाये । विदेशी बैंकों के लिए हमारे दृष्टिकोण के प्रति भी कुछ बेचैनी है, हालाँकि इस संबंध में भी हम डब्लूटीओ मानदंडों से आगे हैं और हमने रूपरेखा एवं समीक्षा की सीमा रेखा भी निर्धारित कर दी है, जो वित्तीय सेवाओं में अंतरराष्ट्रीय वाणिज्य के संबंध में व्यापक सहमति की शर्त पर है । निश्चित रूप से हम सतर्क रहे हैं और कुछ अन्य ईएमई की तुलना में वित्तीय क्षेत्र सुधारों के प्रति अपने दृष्टिकोण में रूढ़िवादी रहे हैं ।

इस संबंध में यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि भारत के वृद्धि पथ में न केवल ऊर्ध्वमुखी बदलाव स्थिर गति से आया है, बल्कि इसके साथ एक टिकाऊ स्थायित्व भी आया है । भारत के वृद्धि संबंधी अनुभव का एक महत्वपूर्ण लक्षण वैश्विक और घरेलू आघातों को झेलने की इसकी समुत्थानशक्ति भी रही है। इस संबंध में, जबकि वित्तीय क्षेत्र सुधारों का व्यापक उद्देश्य दक्षता और उत्पादकता को बढ़ाना रहा था, सुधार की प्रक्रिया धीरे-धीरे और सिलसिलेवार रूप से आरंभ की गयी थी, ताकि इसका प्रबलित प्रभाव हो। दृष्टिकोण यह रहा है कि परामर्शी प्रक्रिया के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम व्यवहारों को अपनाकर वित्तीय क्षेत्र का सुसंगत रूप से कोटि उन्नयन किया जाये ।

वित्तीय बाजारों के बढ़ते अविनियमन और विश्व अर्थव्यवस्था के बढ़ते एकीकरण के साथ 1990 का दशक विश्व वित्तीय बाजार के लिए उथल-पुथल भरा रहा: उस दशक में 63 देश प्रणालीगत बैंकिंग संकट से गुजरे, और 1980 के दशक में 45 देश इस प्रकार के संकट से गुजरे थे । जिन देशों ने इस प्रकार के संकट का अनुभव किया उनके बीच वित्तीय प्रणाली की पुनर्संरचना की प्रत्यक्ष लागत विशेष रूप से ऊँची थी : उदाहरण के लिए अर्जेंटीना में बैंकों के पुन:पूँजीकरण की लागत जीडीपी के 55 प्रतिशत आयी थी, थाईलैंड में 42 प्रतिशत, कोरिया में 35 प्रतिशत और तुर्की में 10 प्रतिशत । इसके अतिरिक्त खो दिये गये अवसरों और धीमी आर्थिक वृद्धि की ऊँची अप्रत्यक्ष लागत भी आयी थी । इसलिए यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि भारत वित्तीय अविनियमन की अपनी प्रक्रिया को विश्व वित्तीय बाजार में इस उथल-पुथल की अवधि में बिना किसी वित्तीय संकट का सामना किये आगे बढ़ा सका और अर्थव्यवस्था को उन्मुक्त कर सका। जीडीपी के 1 प्रतिशत से भी कम पर सरकारी क्षेत्र के बैंकों की पुन:पूँजीकरण लागत इसलिए तुलनात्मक रूप से कम है।

हमारे मूल्यांकन में क्रमवादी दृष्टिकोण युक्तियुक्त रहा है, खासकर एक जनतांत्रिक समाज के संदर्भ में और देश के बहुजातीय और भाषाई संघटन को देखते हुए । सुधारों की स्थिर गति फलदायी रही है, जिसमें समाज के बड़े हिस्से को सुधार प्रक्रिया में शामिल किया गया है । जो बात उल्लेखनीय है वह है सुधार प्रयासों का विशुद्ध परिमाण और गुणवत्ता, जैसाकि इसके वास्तविक नतीजे से स्पष्ट होता है । भारत में बैंकिंग प्रणाली पिछले 16 वर्षों के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तनों से होकर गुजरी है । विभिन्न देशों में महत्वपूर्ण बैंकिंग संकेतकों का सर्वेक्षण यह प्रकट करता है कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली अब प्रमुख संकेतकों के संदर्भ में विकसित अर्थव्यवस्थाओं से तुलनीय है (सारणी 10) । समूची प्रणाली के लिए अंत-मार्च 2006 में 12.4 प्रतिशत पर पूँजी पर्याप्तता अनुपात अधिकांश उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से तुलनीय है । इसी प्रकार कुल ऋणों में बैंकों के अनर्जक ऋणों का अनुपात भी स्थिर गति से कम हुआ है और वह अनेक उभरती अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में कम है। आस्तियों पर प्रतिलाभ के संदर्भ में भारतीय बैंकिंग प्रणाली का कार्यनिष्पादन उन्नत अर्थव्यवस्थाओं, यथा, जर्मनी और यू.के. से तुलनीय है ।

विभिन्न देशों की तुलना से पता चलता है कि अनेक अन्य देशों ने भी अपने बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ करने में काफी प्रगति की है । तथापि, भारतीय अनुभव का एक उल्लेखनीय पहलू यह है कि हम बिना किसी संकट के और राजकोष से नगण्य खर्च पर अपनी बैंकिंग प्रणाली को सुदृढ़ बनाने में सक्षम हुए हैं। जबकि इसके साथ-साथ वृद्धि में गति, मूल्य स्थिरता और वित्तीय बाजारों में सुसंगत विकास का लक्ष्य प्राप्त किया है । हमारा बैंकिंग क्षेत्र सुधार विश्व में अन्यतम रहा है, क्योंकि यह प्रतिस्पर्द्धा, विनियम और स्वामित्व के व्यापक पुनर्विन्यास को गैर-विघटनकारी एवं किफायती ढंग से संयुक्त करता है । वास्तव में हमारा बैंकिंग सुधार पिछली समस्याओं

सारणी 10 : विभिन्न देशों में चुनिंदा बैंकिंग संकेतक - एक तुलना

(प्रतिशत)

देश	विनियामक जोखिम भारित परिसंपत्ति की तुलना में पूँजी का अनुपात (सीआरएआर)		कुल ऋणों में अनर्जक ऋणों का अनुपात		अनर्जक ऋणों के लिए प्रावधान		आस्तियों पर प्रतिलाभ	
	2002	2006	2002	2006	2002	2006	2002	2006
1	2	3	4	5	6	7	8	9
विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ								
अर्जेंटीना	–	–	18.1	3.4	73.8	130.2	-8.9	2.0
ब्राजील	16.6	18.9	4.5	4.1	155.9	152.8	2.1	2.5
चीन	–	–	26.0	7.5	–	–	–	0.9
भारत	12.0	12.4	10.4	3.5	–	58.9	0.8	0.9
इंडोनेशिया	20.1	21.3	24.0	13.1	130.0	99.7	1.4	2.6
कोरिया	11.2	12.8	2.4	0.8	89.6	175.2	0.6	1.1
मलयेशिया	13.2	13.5	15.9	8.5	38.1	50.7	1.3	1.3
मेक्सिको	15.7	16.3	3.7	2.1	138.1	207.4	0.7	3.1
फिलीपीन्स	16.9	–	26.5	18.6	30.1	37.4	0.8	1.3
रूस	19.1	14.9	5.6	2.6	112.5	159.3	2.6	3.2
दक्षिण अफ्रीका	12.6	12.3	2.8	1.2	46.0	–	0.4	1.4
थाईलैंड	13.0	13.8	15.7	7.5	62.9	79.4	–	2.3
तुर्की	24.4	21.1	12.7	3.2	64.2	90.8	1.2	2.4
विकसित अर्थव्यवस्थाएँ								
आस्ट्रेलिया	9.6	10.4	0.4	0.2	106.2	204.5	1.4	–
कनाडा	12.4	12.5	1.6	0.4	41.1	55.3	0.4	1.0
फ्रांस	11.5	–	4.2	3.2	58.4	58.7	0.5	–
जर्मनी	12.7	–	5.0	4.0	–	–	0.1	0.5
इटली	11.2	10.7	6.5	5.3	–	46.0	0.5	0.8
जापान	9.4	13.1	7.4	2.5	–	30.3	-0.7	0.4
युनाइटेड किंगडम	13.1	12.9	2.6	0.9	75.0	–	0.4	0.5
अमेरिका	13.0	13.0	1.4	0.8	123.7	137.2	1.3	1.3

स्रोत : ग्लोबल फाइनैंशियल स्टैबिलिटी रिपोर्ट, 2007, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष।

का प्रबंध करने में सार्वजनिक क्षेत्र की गत्यात्मकता और घरेलू एवं विदेशी निजी क्षेत्र को प्रतिस्पर्द्धा करने एवं विस्तार करने में समर्थ बनाने की सरकारी नीति की व्यावहारिकता का उत्तम दृष्टांत है (रेड्डी, 2007)।

समग्र स्थायित्व, जो एक ऐसी प्रणाली को दिया गया है, जो सुधार की प्रक्रिया में है, ने हाल की गतिविधियों के बावजूद हमारे लिए अच्छा कार्य किया है। इसे उदाहरण द्वारा समझाने के लिए मैंने सोचा कि मैं कुछ समय हाल की वित्तीय गतिविधियों, उनके संभावित कारणों और संभावित परिणामों के ऊपर चर्चा में बिताऊँगा, ताकि भारत के वित्तीय क्षेत्र सुधारों के संचालन को बेहतर ढंग से समझा जा सके ।

IV. हाल के अंतरराष्ट्रीय वित्तीय डेवलपर्स: मौद्रिक नीति के मुद्दे और वित्तीय क्षेत्र विनियम

पूर्व के संकटों की तुलना में वर्तमान उथल-पुथल में कार्य-कारण अनुक्रम अत्यधिक सूचना विषमता की दृष्टि से धुँधले दिखाई देते हैं । विश्व-अर्थव्यवस्था के कुछ सुपरिभाषित लक्षण, जो वर्तमान संकट से सीधा संबंध रचाते होंगे, वे हैं 'महत्वपूर्ण नियमन' - अर्थात् मुद्रास्फीति/मुद्रास्फीति अस्थिरता में निरंतर कमी होना, और परिणामस्वरूप सांकेतिक और वास्तविक ब्याज दरों को पूरे विश्व में निरंतर कम किया जाना, जिसने जोखिम

लेने की अभिलाषा को बढ़ा दिया होगा; प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं - अमेरिका, यूरो क्षेत्र और जापान, द्वारा वर्ष 2000 से महत्वपूर्ण मौद्रिक निभाव, जिसने वित्तीय बाजारों में प्रचुर चलनिधि को प्रतिबिंबित किया, अमेरिका और एशिया के बीच समष्टि असंतुलन, बड़े परिमाण में मुद्रा असंरेखण और कैरी-ट्रेड, जोखिम प्रसार का संकुचन, व्यापक रूप से प्रसारित जोखिमों का गलत कीमत-निर्धारण और अनेक उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए वास्तविक-क्षेत्र के निहितार्थ भी; और एशिया का सुदृढ़ समष्टिआर्थिक कार्यनिष्पादन, जिसने आय की अनथक खोज में योगदान किया है और जोखिम के लिए बढ़ती अभिलाषा (मोहन, 2007ई) ।

निरंतर न्यून मुद्रास्फीति के साथ विश्व भर में समंजनकारी मौद्रिक नीति ने केंद्रीय बैंकों और मौद्रिक नीति की इस योग्यता पर अत्यधिक भरोसा किया होगा कि वे अनिश्चित समय तक मुद्रास्फीति दरों और ब्याज दरों को कम रख सकते हैं, जिसके चलते जोखिम का कम कीमत-निर्धारण हुआ और इसलिए अत्यधिक जोखिम ग्रहण हुआ । यह परिणाम 1990 के दशक में, जब विनिमय दरें अपेक्षाकृत नियत होती थीं, और इसलिए उनका जोखिम बोध कम था और इसलिए जोखिम का कम कीमत-निर्धारण किया जाता था, पूर्व एशिया के देशों में निजी क्षेत्र उधारकर्ताओं और बैंकों द्वारा लिये गये अत्यधिक विदेशी उधार के सदृश है । यह विडंबना हो सकती है कि केंद्रीय बैंकों की अनुभूत सफलता और मौद्रिक नीति की बढ़ी हुई विश्वसनीयता ने मुद्रास्फीति और ब्याज दरों, दोनों के संबंध में बढ़ती उम्मीदों के क़ारण जोखिमों का कम कीमत-निर्धारण किया होगा और इसलिए अधिक जोखिम ग्रहण हुआ होगा । फिर एक दूसरा विचार यह है कि केंद्रीय बैंकों की सफलता या विफलता से अधिक ब्याज दरों के आगामी समय में स्थिर बने रहने के बारंबार आश्वासन ने प्रचुर चलनिधि उपलब्धता के साथ मिलकर बाजारों को जोखिमों के न्यून कीमत निर्धारण की ओर प्रेरित किया होगा । यह विचार परिणामतः उन केंद्रीय बैंकों पर दोषारोपण करता है, जिन्होंने बाजारों को इसका अवसर नहीं दिया कि वे नीति के औचक तत्वों से परहेज करते हुए जोखिमों का मूल्यांकन करें । यह संभव है कि बढ़ते वैश्वीकरण के कारण, जिसका परिणाम इस अवधि के दौरान क्रय-विक्रय योग्य वस्तुओं की कीमतों को रोकने और इसलिए मापित मुद्रास्फीति में हुआ, अत्यधिक चलनिधि ने दुनिया भर में आस्ति कीमतों को ऊपर उठा दिया और उसके साथ-साथ आय की खोज में सीमापार बढ़ा हुआ पूँजी प्रवाह देखने को मिला ।

जैसे ही कुछ मौद्रिक निभाव की वापसी अनुभूति या दृश्य स्फीतिकारक दबाव की प्रतिक्रिया में की गयी, सबप्राइम संकट ने इन असुरक्षाओं को विशुद्ध रूप से प्रकट किया, जैसे ही भरोसा टूटा, बाजार निश्चल हुए और निवेशकों तथा उधारदाताओं में अपनी जटिल जोखिमपूर्ण आस्तियों एवं सुनियोजित डेरिवेटिव उत्पादों का मूल्यन करने की अयोग्यता का आतंक बढ़ गया । कुछ अनुमानों के अनुसार सबप्राइम से संबद्ध कुल घाटा 200 बिलियन अमरीकी डालर से अधिक हो सकता है (दि इकॉनॉमिस्ट, 2007), जो बाजार विनिमय दरों पर मापित भारत के जीडीपी के पाँचवें हिस्से से अधिक है ? ओईसीडी के अनुमानों के अनुसार यह घाटा 300 बिलियन अमरीकी डालर तक हो सकता है । साख संबंधी भरोसे में कमी होने से बैंक अपने तुलनपत्र बाह्य ''विशेष निवेश माध्यमों (एसआइवी)'' को ऋण देने को बाध्य हुए, जिसने उनकी पूँजी का उपयोग किया, जिसके चलते अन्य उधारकर्ताओं को ऋण की उपलब्धि बाधित हुई। इस प्रकार यह तर्क दिया जा सकता है कि सबप्राइम एक लक्षण है, न कि कारण। तर्क दिया जा सकता है कि नतीजे एकदम अलग हुए होते, यदि, उदाहरण के लिए, मुद्रास्फीति कम

होने से ब्याज दरें कम हुईं, लेकिन मौद्रिक नीति में कोई निभाव नहीं दिया गया और इसीलिए चलनिधि की प्रचुरता नहीं हुई ।इसके बारे में विश्वासोत्पादक विपरीत विचार भी है, जिसे एलेन ग्रीनस्पैन द्वारा स्पष्ट किया गया है कि मुद्रास्फीति में महान नियमन का कारण वास्तविक अर्थव्यवस्था संबंधी घटना हो सकती है : अमेरिका में लंबे समय तक उत्पादकता वृद्धि की स्थिति रहने; और चीन तथा भारत में नये कामगारों के चलते दुनिया भर में मजदूरी वृद्धि में मंदक प्रभाव होने के कारण मुद्रास्फीति में कमी होना।

ऐसा व्यापक रूप से समझा जाता है कि ऋण बाजार की विशेषता सूचना की विषमता रही है । पहला, सूचना प्रौद्योगिकी के उपलब्ध होने से सूचना संग्रहण तथा उसके अनुरक्षण की लागत कम हुई है । इस प्रकार एक व्यापक विश्वास बना है कि लघु उधारकर्ताओं की, जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हो सकते हैं, साख गुणवत्ता के संबंध में सूचना को अवैयक्तिक बनाकर उनका पैकेज बनाया जा सकता है, संसाधन किया जा सकता है और उन्हें बेचा जा सकता है । दूसरा, ऐसी प्रौद्योगिकी उपलब्ध होने से और यह विश्वास बनने से कि ऐसी सूचना विन्यस्त आधार पर उपलब्ध हुई, काफी बड़ी मात्रा में वित्तीय नवोन्मेष हो सका, जिसने अनिवार्य रूप से निवेशक या जोखिम उठाने वाले को प्रगामी रूप से अंतिम उधारकर्ता से दूर रखा, जहाँ वास्तविक जोखिम होता । बंधक दलालों, बंधक कंपनियों, समितियों और इसी तरह के अन्य मध्यवर्तियों की पूरी जमात तब तब अपनी बंधक आस्तियों को, जिनमें अननुरूपी ऋण शामिल थे, पैकेज बनाकर भिन्न-भिन्न कोटियों के निवेशकों को, जिनमें विशेष निवेश माध्यम (एसआइवी) शामिल थे, हेज फंडों को और इसी तरह के अन्य को, जिनमें से अधिकांश विनियमित नहीं थे, बेचने में समर्थ होते । इस कार्यकलाप के पीछे मार्गदर्शी सिद्धांत यह था कि ऋण-पात्रता निर्धारण एजेंसियों के लिए यह संभव था कि उन्हें निरंतर आधार पर काफी सूचना मिलती रहती, ताकि वे उन लिखतों का दर-निर्धारण कर सकते थे, जिनका पैकेज बनाया गया था। यह तर्क निश्चित रूप से दिया जा सकता है कि यह कोई नयी गतिविधि नहीं है, क्योंकि बंधक समर्थित प्रतिभूतियाँ (एमबीएस) और आस्ति समर्थित प्रतिभूतियाँ (एबीएस) कुछ समय से हमारे पास रही हैं और वे निरंतर आधार पर ऋण बाजारों को चलनिधि, बिना किसी दुर्घटना के, देने में सफल रही हैं ।अंतर शायद यह है कि सरकार प्रायोजित कंपनियों (जीएसई) द्वारा पैकेज बनायी गयी एमबीएस अपेक्षाकृत कुछ सुप्रवर्तित मानदंडों के अधीन होती थीं, जो संभवतः इन लिखतों में अंतर्भूत संभावित जोखिमों को कम कर देते थे।

इसी प्रकार के विचार मुद्दों के तीसरे सेट की ओर ले जाते हैं, जो कारगर वित्तीय विनियमन और पर्यवेक्षण की भूमिका से संबंध रखते हैं । क्या हाल के संकट ने विकसित देशों में वित्तीय बाजारों के सुदृढ़ निरीक्षण किये जाने को रेखांकित किया है ? परंपरागत रूप से वित्तीय निगरानी ने बैंकिंग विनियमों पर अपेक्षाकृत अधिक जोर दिया है । बैंक सुविधाप्राप्त वित्तीय प्रतिष्ठान होते हैं, जो जमाराशियाँ रखते हुए जनता के धन के प्रभावशाली न्यासी भी होते हैं। अतः उनका कारगर ढंग से विनियमन और पर्यवेक्षण किया जाना होता है, ताकि बैंकिंग प्रणाली में जनता का विश्वास बना रहे और बैंकों द्वारा अधिक जोखिम उठाये जाने से जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके । दूसरी ओर, हेज फंडों के निवेश ऊँची निवल संपत्ति रखने वाले व्यक्ति होते हैं, जिन्हें ऐसी सुरक्षा की आवश्यकता नहीं होती है । वे जानकार निवेशक होते हैं, जो बाजारों की सूचना दक्षता का लाभ उठाने में समर्थ होते हैं और, इसलिए सूचना विषमता द्वारा विवक्षित जोखिमों को समझ सकते हैं । तथापि, वर्तमान संकट इन निवेशकों द्वारा सामना की गयी कठिनाइयों के कारण उत्पन्न हुआ था, जिन्होंने सबप्राइम बंधक निवेशों में बड़ा निवेश किया था और इन लिखतों में अंतर्भूत संभावित जोखिमों को ध्यान में नहीं रखा था ।

इन मुद्दों के प्रति हमारा क्या दृष्टिकोण रहा है ? यद्यपि कुछ क्षेत्रों में, खासकर यू.के. में, इस समय यह चेष्टा की जा रही है कि परंपरागत ''नियम आधारित'' विनियम से ''सिद्धांत आधारित'' विनियम की ओर चला जाये, हम परंपरागत विनियामक दृष्टिकोण को जारी रखे हुए हैं । जबकि बैंकों को हमने क्रमिक रूप से उनके संविभागीय निर्णयों में अधिक नमनीयता प्रदान की है, जो सुधार-पूर्व की स्थिति से संबंधित है, हमने विनियमित वित्तीय संस्थाओं के जोखिम निवेश पर गहरी नजर रखी है । इसलिए हम डेरिवेटिवों के बारे में सतर्क रहे हैं और उन्हें धीरे-धीरे लागू कर रहे हैं, जो विविध विनियमित संस्थाओं की जोखिम प्रबंधन सक्षमताओं के हमारे बोध पर आधारित है । यह एक स्वीकृत तथ्य है कि इससे उन संस्थाओं में अधैर्य उत्पन्न हुआ है, जो अपनी जोखिम प्रबंधन क्षमता को उच्च कोटि का मानती हैं । तथापि, जिस मुद्दे पर हमें विचार करना है, वह है विभिन्न संस्थाओं के बीच ऐसी सक्षमताओं में बड़ा अंतर होने की वास्तविकता । यह सत्य है कि वित्तीय बाजारों को सर्वाधिक पिछलग्गू संस्थाओं का बंधक नहीं बनाया जा सकता है। इसलिए हमने आधुनिक वित्तीय नवोन्मेषों को आरंभ किये जाने का मापित दृष्टिकोण अपनाया है ।

दूसरा, हम जोखिमपूर्ण क्षेत्रों में बैंकों के निवेशों पर तो निगरानी रखते ही हैं और विवेकपूर्ण मानदंडों के माध्यम से ऐसे क्षेत्रों में उनके निवेशों को सीमित देखना चाहते हैं । बैंकों का सभी रूपों में (निधि आधारित और गैर-निधि आधारित, दोनों में) पूँजी बाजार में निवेश उनकी निवल संपत्ति के 40 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता । इसी प्रकार, जैसे ही हमने कुछ खंडों में, यथा, स्थावर संपदा, आवास, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसी) और अन्य फुटकर ऋण खंडों, में अत्युच्च ऋण वृद्धि देखी, वैसे ही मानक आस्तियों के लिए प्रावधानन मानदंडों के साथ जोखिम भारांकों को बढ़ाया गया ।

तीसरा, विकासमूलक वैश्विक विवेकपूर्ण ढाँचे के संदर्भ में चलनिधि जोखिम के लिए विवेकपूर्ण अपेक्षाओं की तुलना में जोखिमों के प्रति असुरक्षा को कम किये जाने के साधन के रूप में सामान्यतः पूँजी पर अधिक ज़ोर रहा है । चलनिधि से संबंधित पहलुओं को अधिकांशतः प्रत्येक विनियामक के ऊपर छोड़ दिया गया है कि वह मूल्यांकन करे और बासल II के पिलर II के अंतर्गत एक उपयुक्त ढाँचा निर्धारित करे ।भारतीय संदर्भ में, जबकि बैंकों को लोच प्राप्त है कि वे अपनी स्वयं की जोखिम प्रबंधन नीतियाँ अपने निदेशक मंडल के अनुमोदन से बनायें, रिज़र्व बैंक ने अल्पावधि में चलनिधि जोखिमों, प्रणालीगत स्तर पर जोखिमों और संस्था स्तर पर जोखिमों का भी उपशमन करने के लिए कुछ कदम उठाये हैं (रेड्डी, 2007 सी) । इस संबंध मेंकुछ महत्वपूर्ण उपाय निम्नलिखित हैं :

- निधियों के लिए अप्रतिभूत बाजार केवल बैंकों और प्राथमिक व्यापारियों (पीडी) के लिए हैं । रेपो बाजारों - द्विपक्षीय रेपो और संपार्श्विकीकृत उधार लेन-देने संबंधी दायित्व (त्रिपक्षीय रेपो का एक रूप), दोनों को विकसित किया गया , इसके परिणामस्वरूप, व्यापार का परिमाण ओवरनाइट अप्रतिभूत बाजार से संपार्श्विकीकृत बाजार में अंतरित हो गया है ।
- चूँकि बैंकों द्वारा बृहत्तर अंतर्संबद्धता और मांग मुद्रा उधार के आधिक्य से प्रणालीगत समस्याएँ उत्पन्न हो सकती थीं, अतः विवेकपूर्ण उपाय आरंभ किये गये, ताकि इस पर ध्यान दिया जा सके कि बैंक किस सीमा तक मांग मुद्रा बाजार से उधार लेने-देने का कार्य कर सकते हैं । पाक्षिक औसत आधार पर बकाया मांग बाजार उधार नवीनतम लेखापरीक्षित तुलनपत्र की पूँजीगत निधियों के 100 प्रतिशत (अर्थात् स्तर I और स्तर II पूँजी के योग)

से अधिक नहीं होना चाहिए । तथापि, बैंकों को अनुमति दी गयी है कि वे पखवाड़े में किसी भी दिन अपनी पूँजीगत निधियों का अधिकतम 125 प्रतिशत उधार ले सकते हैं । इसी प्रकार पाक्षिक औसत आधार पर मांग बाजार में उनकी पूँजी के 25 प्रतिशत से अधिक उधार नहीं दिया जाना चाहिए; तथापि, बैंकों को अनुमति दी गयी है कि वे किसी पखवाड़े में अपनी पूँजीगत निधियों का अधिकतम 50 प्रतिशत उधार दे सकते हैं ।

- किसी बैंक की 'खरीदी गयी अंतर-बैंक देयता' (आइबीएल) इसकी निवल संपत्ति के 200 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए (उन बैंकों के लिए 300 प्रतिशत, जिनका सीआरएआर 11.25 प्रतिशत से अधिक है) ।
- अन्य पर्यवेक्षकों की तरह रिज़र्व बैंक ने तुलनपत्र में आने वाली और न आने वाली मदों को ध्यान में रख कर समग्र आस्ति-देयता असंतुलनों के संबंध में कार्रवाई किये जाने के लिए आस्ति-देयता प्रबंधन दिशानिर्देश जारी किये हैं ।
- रिज़र्व बैंक, बैंकों के कार्यकलापों के अपने पर्यवेक्षकीय निरीक्षण में बैंकों के वृद्धिशील ऋण-जमा अनुपात की भी निगरानी करता है । हालाँकि बैंक परिष्कृत जोखिम प्रबंधन नीतियों का कार्यान्वयन कर सकते हैं, यह एकल अनुपात न्यूनतम अंतराल के साथ उस सीमा का संकेत करता है जहाँ तक बैंक थोक बाजार से उधार लेकर या अब जिसे कहा जाता है खरीदी गयी निधियों से ऋण का निधीयन कर सकते हैं ।
- मानक आस्तियों के प्रतिभूतिकरण के संबंध में रिज़र्व बैंक के दिशानिर्देशों ने विशेष प्रयोजन माध्यम (एपीवी) को चलनिधि समर्थन देने के प्रावधान के संबंध में सविस्तर नीति का अधिकथन किया है । चलनिधि का प्रावधान इस शर्त के अधीन है कि यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि चलनिधि समर्थन केवल अस्थायी है और उसे नकदी प्रवाह असंतुलनों को पूरा करने के लिए लागू किया जाता है । ऐसी चलनिधि सुविधा देने के लिए किये गये किसी वायदे को तुलनपत्र बाह्य मद के रूप में माना जाता है और वह 100 प्रतिशत ऋण संपरिवर्तन कारक तथा 100 प्रतिशत जोखिम भार को आकृष्ट करता है ।

चौथा, चूँकि रिज़र्व बैंक का विनियामक उत्तरदायित्व एनबीएफसी के लिए भी है, हमने उनके कार्यकलापों में विविध विवेकपूर्ण मानदंडों को भी आरंभ करने की कार्रवाई की है, जहाँ हम विश्वास करते हैं कि उनके कार्यकलापों का कोई प्रणालीगत प्रभाव हो सकता है । विनियामक हस्तक्षेप श्रेणीकृत होते हैं : जमा स्वीकार करने वाली संस्थाओं में अधिक और जमा स्वीकार नहीं करने वाली संस्थाओं में कम । विकसित वित्तीय बाजारों में हाल के संकटों ने यह दृष्टांत प्रस्तुत किया है कि पृथक्करण की ये रेखाएँ कितनी महीन हैं : जमा स्वीकार नहीं करने वाली मध्यवर्ती संस्थाओं, यथा, एसआइवी, द्वारा अनुभव की गयी कठिनाइयाँ अंततः जमा स्वीकार करने वाली विनियमित संस्थाओं, यथा, बैंकों को भी अनुभव करनी पड़ती हैं ।

इस प्रकार हम यह तो महसूस करते ही हैं कि न्यायसंगत विवेकपूर्ण विनियमों एवं पर्यवेक्षण तथा बढ़ी हुई बाजार निगरानी और प्रत्याशा वित्तीय बाजारों के उत्तम नियंत्रण के लिए आवश्यक हैं । सच में, हमें सतर्क रहना है कि उद्यमिता एवं वित्तीय नवोन्मेष को दबाया न जाये । लेकिन हम यह भी महसूस करते हैं कि हमें निरंतर यह प्रश्न करना चाहिए ''वित्तीय नवोन्मेष किस उद्देश्य के लिए ?'' जब तक वित्तीय नवोन्मेष को कीमत अनुसंधान के संवर्धन के लिए, बृहत्तर मध्यवर्ती कार्यकुशलता के लिए और इसीलिए समग्र दक्षता एवं

वृद्धि के लिए किया जाता है, तब तक इसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, लेकिन युक्तियुक्त सुरक्षा उपायों के साथ, ताकि वित्तीय स्थायित्व बना रहे ।

वर्तमान बाजार संकट से दो प्रकार की सीख मिलती है । एक ओर, बाजार नवोन्मेष वस्तुतः वित्तीय बाजारों को उनके नजदीक ले आया है, जिन्हें ऋण की जरूरत है और जिन्हें पूर्व में इस तक पहुँच प्राप्त नहीं थी । सबप्राइम उधारकर्ताओं से संबद्ध सभी समस्याओं के बावजूद इस तथ्य को मानना होगा कि लगभग 10 मिलियन उधारकर्ता इस बाजार से लाभान्वित हुए और आवास वित्त तक पहुँच प्राप्त करने में समर्थ हुए, जो पूर्व में संभव नहीं समझा जाता था । इनमें से लगभग 20 प्रतिशत उधारकर्ताओं के दोषी और कठिनाई में होने की रिपोर्ट मिलने पर भी लगभग 8 मिलियन उधारकर्ताओं ने स्पष्टतः इस बाजार से लाभ उठाया । दूसरी ओर, जो कठिनाइयाँ सामने आयीं, उन्होंने इस प्रकार के मुद्दों की ओर ध्यान आकृष्ट कराया, जो उस समय उठते हैं, जब नवोन्मेष की गति एवं प्रेरक संरचना में इस प्रकार अड़चन डाली जाती है कि इससे अनाचार होता है और सूचना प्राप्त करने एवं उसका पण्यीकरण किये जाने में तात्विक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं, जो इस प्रकार के पण्यीकरण के लिए ग्रहणशील नहीं होतीं ।

एक प्रमुख प्रश्न, जो वित्तीय बाजारों की वर्तमान गतिविधियों से उभरा है, उसका संबंध ऐसे संकट के संबंध में मौद्रिक प्राधिकारियों की भूमिका से संबंधित है। यह मुद्दा केंद्रीय बैंक में काम करने वाले हम सभी लोगों के लिए चिंता का विषय है । पिछले दशक में या दो दशक पूर्व से यह प्रतीत होता रहा है कि केंद्रीय बैंकों का ध्यान उन जटिल उत्तरदायित्वों के प्रति, जो परंपरागत रूप से उन्हें वहन करना होता है, कम रहा है । इस मुद्दे के संबंध में बहुत कुछ लिखा गया है, व्यावहारिक रूप से अनेक परिवर्तन हुए हैं, कुछ देशों में विनियामक संरचना को ही बदल डाला गया है, ताकि केंद्रीय बैंक विशुद्ध रूप से केवल मौद्रिक प्राधिकारी बने रहें । इस विचार के अनुसार, केंद्रीय बैंकों को अधिक ध्यान मुद्रास्फीति को कम और स्थिर रखने पर देना चाहिए और ऐसा करने में वित्तीय स्थायित्व में भी योगदान करना चाहिए । हार्वर्ड के अर्थशास्त्री केनेथ रोगॉफ का कहना है : ''वास्तव में अनेक अर्थशास्त्री यह विश्वास करते हैं कि केंद्रीय बैंकों के स्थान पर एक सरल नियम को कार्यान्वित करने के लिए कंप्यूटर का एक प्रोग्राम होना चाहिए, जो उत्पादन और मुद्रास्फीति की प्रतिक्रिया में ब्याज दरों का समायोजन करता हो । लेकिन जबकि (यह) विचार सिद्धांत रूप से परिशुद्ध है, वास्तविकता ऐसी नहीं है'' (बिजनेस वर्ल्ड, 17 सितंबर 2007) । यद्यपि कुछ केंद्रीय बैंकों, यथा, अमरीकी फेडरल रिज़र्व, के लिए यह स्पष्ट अधिदेश होता है कि वे वृद्धि का भी संवर्धन करें, फिर भी हाल में कुछ ऐसी सोच सामने आयी है कि मुद्रास्फीति के नियंत्रण से वृद्धि का संवर्धन अपने आप होगा और केंद्रीय बैंक केवल इसी उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित कर अच्छी स्थिति में होंगे ।

यह जाँच करना ज्ञानप्रद होगा कि केंद्रीय बैंकों ने वर्तमान संदर्भ में क्या कुछ किया है । वित्तीय बाजारों में हाल की घटनाओं के प्रति केंद्रीय बैंकों की प्रतिक्रिया ने यह दर्शाया है कि वित्तीय स्थायित्व के लिए चिंता अभिभावी महत्व ग्रहण कर सकती है, भले ही केंद्रीय बैंकों को निरंतर जारी रहने वाले सुधारों के भाग के रूप में विधायी अधिदेश दिया गया हो । यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि केंद्रीय बैंकों ने प्रारंभ में विशेष सुविधाओं और पात्र संपार्श्विक की सूची का विस्तार करने के माध्यम से चलनिधि का अंतःक्षेप किया था । विविध मंचों पर केंद्रीय बैंकों के बारे में चर्चाओं से यह संकेत मिलता है कि वे वृद्धि को बनाये रखने के लिए अन्य कार्रवाइयों पर भी विचार करते हैं । जैसाकि हम सभी जानते हैं, अमरीकी फेडरल रिज़र्व ने आगे बढ़कर ब्याज दरों में

कटौती की है, ताकि वृद्धि का संवर्धन हो और वित्तीय स्थायित्व बना रहे; यू.के. के प्राधिकारियों को एक विनिर्दिष्ट संस्था में चलनिधि देनी पड़ी, जबकि जमाकर्ताओं को एक निर्बंध गारंटी दी गयी कि उनकी जमाराशियाँ सुरक्षित रहेंगी । तदनुसार, यह स्पष्ट होता जा रहा है कि केंद्रीय बैंकों की भूमिका मुद्रास्फीति को लक्ष्य बनाने के परे भी है । स्पष्टतः वृद्धि और वित्तीय स्थायित्व, दोनों ही केंद्रीय बैंकों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं ।

जब अंतिम उधारदाता (एलओएलआर) के रूप में अपनी भूमिका और वित्तीय स्थायित्व के अभिभावक के रूप में अपने उत्तरदायित्वों को निभाने के संबंध में केंद्रीय बैंकों के लिए महत्वपूर्ण निर्णय लेने के क्षण आते हैं, तब उनके लिए और अधिक जटिल कार्य करने की आवश्यकता होती है । क्या केंद्रीय बैंकों को समूची प्रणाली में केवल खुला बाजार परिचालनों के माध्यम से प्रणालीगत चलनिधि का अंतःक्षेप करते हुए अंतिम उधारदाता बनना चाहिए या अलग अलग वैसी संस्थाओं को भी चलनिधि प्रदान करनी चाहिए, जिन्हें अर्थक्षम माना जाता है, लेकिन जिनके पास नकदी का अभाव होता है ? वे इस निर्णय पर किस तरह पहुँचते हैं , यदि उनके पास अलग अलग संस्थाओं के संबंध में पर्याप्त जानकारी नहीं हो ? क्या विनियमन एवं पर्यवेक्षण के लिए निरंतर जारी रहने वाले उनके उत्तरदायित्वों के बिना उनके पास ऐसी विस्तृत जानकारी हो सकती है ? यह मुद्दा विषम सूचना के अस्तित्व में होने के संदर्भ में संपार्श्विक अंतर्निहित आस्ति समर्थित प्रतिभूतियों के मूल्य से संबंधित जानकारी की पर्याप्त पारदर्शिता की समस्या के असमान नहीं है ।

बैंक और वित्तीय संस्थाएं प्रतिरूपी तौर पर उत्तोलित (लिवरेज्ड) संस्थाएं हैः इस प्रकार उनकी शोधक्षमता से संबंधित निर्णय कठिनाइयाँ उत्पन्न होने पर उनकी आस्तियों के मूल्यन पर निर्भर करता है। वर्तमान मामले में, बैंकों ने कई माध्यमों से ऐसी प्रतिभूतियों में निवेश किया है, जिनके मूल्य संदिग्ध हैं। बैंक उन माध्यमों के प्रति भी वचनबद्ध हैं, जिनकी तरलता और/या अर्थक्षमता संदिग्ध है। अंतिम उधारदाता द्वारा चलनिधि समर्थन दिए जाते समय, केन्द्रीय बैंक इस बात का निर्णय किस प्रकार करे कि वह जिन संस्थाओं को चलनिधि प्रदान कर रहा है उनमें कितनी शोधक्षमता है? चूँकि केन्द्रीय बैंकों की उपयुक्त भूमिका की गुरूतर मान्यता और समादर का महत्व बढ़ रहा है, यह संभव है कि इससे केन्द्रीय बैंकों की कार्यप्रणाली पर और पुनर्विचार होगा। इस संबंध में एक मामला यह है कि वित्तीय विनियमन और पर्यवेक्षण को उस मौद्रिक नीति से अलग किया जाए जिसने वर्तमान संकट के संदर्भ में अप्रभावी और अपर्याप्त निगरानी में अंशदान किया हो। ऐसी राय है कि सूचना असममिति की समस्या उन बैंकों के साथ और गंभीर हो गई होगी जो मौद्रिक प्राधिकारी एवं बैंकिंग पर्यवेक्षण के प्रभारी विनियामक निकाय दोनों को रिपोर्ट करते हैं।

चूँकि भारतीय रिज़र्व बैंक बैंकिंग विनियामक और पर्यवेक्षक भी है, हम बैंकिंग कार्यकलाप के संबंध में निरंतर जानकारी प्राप्त करते रहते हैं; इसके अतिरिक्त, वैसे समयों, यथा,वर्तमान उथल-पुथल, में हम प्रमुख महत्वपूर्ण संस्थाओं से क्रमबद्ध रूप में द्रुत गति से प्रासंगिक जोखिमों के बारे में सूचना प्राप्त कर सकते हैं । इस प्रकार तत्पर सुधारात्मक कार्रवाई की पूरी गुंजाइश होती है ।

V. भविष्य के लिए चुनौतियां

अब मैं भारत में वित्तीय क्षेत्र के सामने उभरती चुनौतियों की ओर मुड़ते हुए, जो सुधारों की अगली पीढ़ी के रास्ते को आकार प्रदान कर सकती हैं, अपनी बात समाप्त करना चाहता हूँ । वृद्धि में निरंतर गति, जिसके समर्थन में अनेक उपाख्यानात्मक संकेत हैं, ने अधिक संख्या में परिवारों को उच्च आय वर्ग और उच्च

उपभोक्ता की कोटि में ला खड़ा किया है, जिसके चलते वित्तीय सेवाओं की माँग में काफी बढ़ोतरी हुई है । साथ-साथ औद्योगिक उत्पादन और निर्यात वृद्धि उत्साहजनक बनी रही है और अर्थव्यवस्था में सेवाओं की बढ़ती प्रधानता ने वित्तीय मध्यस्थता के लिए मांग में बढ़ोतरी की है । एक प्रमुख संकेतक है परिवारों को और मझोले औद्योगिक एवं सेवा उद्यमों को उधार देने वाले घरेलू बैंकों में पहले ही आरंभ किया जा चुका विस्तार, जो वित्तीय क्षेत्र कार्यकलाप के नये वृद्धिवाहक बनकर उभरने वाले हैं । भारतीय वित्तीय प्रणाली के लिए सबसे बड़ी चुनौती यह है कि यह किस प्रकार अपना विस्तार करे, जिससे कि यह वित्तीय समावेशन के लिए इन नयी मांगों को पूरा कर सके और नये अवसरों और जोखिमों के प्रति प्रतिक्रिया दे सके। नयी ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऋण सुपुर्दगी की नवोन्मेष सरणियों को विकसित किया जाना होगा, जिसके लिए संभवतः सूचना प्रौद्योगिकी का अधिक उपयोग करना होगा और मानव पूँजी में गहन कौशल विकास करना होगा।

पिछले कुछ वर्षों से वृद्धि में गति ने भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि की मध्यावधि संभावना को द्युतिमान बना दिया है । जैसाकि पहले होता था, घरेलू बचत द्वारा थोक भाव में निवेश अपेक्षाओं का वित्तपोषण किये जाने की उम्मीद है । इस संदर्भ में बैंकिंग प्रणाली वित्तपोषण का महत्वपूर्ण स्रोत बनी रहेगी और बैंक ऋण के लिए मांग में वृद्धि होगी , यद्यपि वर्ष 2003-04 और उसके बाद से बैंक ऋण में तीव्र वृद्धि हुई है, यह मानना होगा कि ऋण जीडीपी अनुपात अभी भी अपेक्षाकृत रूप से कम है । इसके अतिरिक्त, आबादी का एक बड़ा भाग बैंकिंग सेवाओं की परिधि से बाहर है । जैसे-जैसे वृद्धि की प्रक्रिया सुदृढ़ तथा अधिक समावेशक बनेगी, वैसे-वैसे यह उम्मीद है कि आने वाले वर्षों में वित्तीय उत्पादों की मांग में काफी वृद्धि होगी। इस प्रकार इस बात की संभावना है कि बैंक ऋण और मौद्रिक समुच्चयों में वृद्धि उस उम्मीद से अधिक होगी, जो चालू संरचनात्मक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए ऐतिहासिक संबंधों एवं लोच से की जाती है । तथापि, इससे केंद्रीय बैंक के सामने महत्वपूर्ण मुद्दे, जैसेकि मौद्रिक ऋण विस्तार का युक्तियुक्त क्रम, खड़े हो जाते हैं । किसी पैमाने के अभाव में मुद्रा की अत्यधिक आपूर्ति होने से दीर्घावधि में स्फीतिकारक दबाव बढ़ सकता है, यदि मौद्रिक अंतराल को देखा जाये । वास्तव में, पूरी दुनिया में हाल के स्फीतिकारक दबाव का कारण अंशतः विश्व में चलनिधि की प्रचुरता होना है । स्फीतिकारक दबाव को परंपरागत रूप में मापे जाने के अभाव में अत्यधिक मुद्रा एवं ऋण वृद्धि से आस्ति-कीमत बुदबुद भी उठ सकते हैं, जिसका प्रतिकूल प्रभाव बैंकिंग क्षेत्र के स्थायित्व पर तथा विलंबकारी परंपरागत मुद्रास्फीति पर पड़ सकता है । इस प्रकार रिज़र्व बैंक को चालू चुनौतियों का सामना करना होगा, ताकि प्रणाली में युक्तियुक्त चलनिधि दी जा सके, जिससे गैर-स्फीतिकारक वातावरण में वृद्धि सुनिश्चित हो सके ।

पिछले कुछ वर्षों में आवास वित्त की मांग बैंक ऋण के प्रमुख वाहक के रूप में उभरी है । जैसे-जैसे आय में और वृद्धि होगी, और शहरीकरण बढ़ेगा, काफी मात्रा में पिछले शेष कार्य को देखते हुए आवास तथा आवास वित्त की मांग अगले कुछ वर्षों में निरंतर वृद्धि को दर्ज कर सकती है । प्रत्याशित उच्च मांग की दृष्टि से स्थावर संपदा की कीमतों पर दबाव बना रह सकता है। इसके अलावा, स्थावर संपदा बाजारों की विशेषता विकासशील देशों में अपारदर्शिता और अन्य अपूर्णताएँ होती है, और भारत में तो निश्चित रूप से । ऐसी गतिविधियाँ स्थावर संपदा बाजार में आसानी से खलबली पैदा कर सकती हैं, जो आपूर्ति के लोच और सूचना विषमता की समस्याओं के कारण होती है । इस प्रकार अपारदर्शिता के वातावरण में आवास के लिए बढ़ती मांग तथा स्थावर संपदा की कीमतों में उछाल से बैंकिंग

प्रणाली में जोखिम की संभावना हो सकती है । ब्याज दर चक्रों के साथ बैंकिंग प्रणाली और विनियामक के लिए यह आवश्यक होगा कि वह भविष्य में एनपीए तथा अमेरिका की तरह सबप्राइम दुश्चिंताओं के प्रति सतर्क रहे ।

पनपती अर्थव्यवस्था की उच्च निवेश आवश्यकताएँ वित्तीय बाजारों की इस योग्यता पर निर्भर करेंगी कि वे बचतकर्ताओं से संसाधन जुटायें और सर्वाधिक उत्पादक क्षेत्रों में उनका आबंटन कुशलतापूर्वक करें । वृद्धि में तेजी तथा समावेशक वृद्धि पर ध्यान केंद्रित करते हुए वित्तीय बाजारों को संसाधनों के कुशल आबंटन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होगी । बाजारों के बढ़ते खुलेपन तथा संपूर्ण पूँजी परिवर्तनीयता की ओर परिकल्पित चाल को ध्यान में रखते हुए वित्तीय बाजारों का और विकास किया जाना आवश्यक होगा । इसलिए रिज़र्व बैंक को वित्तीय बाजारों को और सुदृढ़ करने, विस्तारित करने तथा एकीकृत करने के लिए उपाय करते रहने होंगे । वित्तीय बाजारों में व्यापक सीमा में लिखतों तथा खिलाड़ियों को अनुमति देते समय यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता होगी कि विकास ठीक ढंग से हो, ताकि सबप्राइम की तरह के संकट से बचा जा सके और स्थायित्व सुनिश्चित हो । भारत जैसे न्यून आय वाले देशों के लिए, जहाँ आबादी का अधिकांश भाग ब्याज दरों और विनिमय दरों में बड़े परिवर्तन को बरदाश्त नहीं कर सकता, स्थायित्व को सुनिश्चित करना लाभप्रद होगा । बैंकों और एनबीएफसी के निवेशों के संबंध में विवेकपूर्ण निवेश मानदंडों को सही तालमेल के साथ काम करने की आवश्यकता होगी, ताकि बैंकों के तुलनपत्रों की और जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके । ऋण सूचना ब्यूरो की स्थापना से उधारकर्ता की ऋण-इतिवृत्त की जानकारी मिलने की उम्मीद है और इससे अपेक्षाकृत उपेक्षित क्षेत्रों को ऋण प्रवाह अधिक हो सकेगा, जबकि वित्तीय क्षेत्र को भी यह स्थायित्व प्रदान करेगा ।

अब तक वित्तीय क्षेत्र सुधारों का अंशांकन विश्व अर्थव्यवस्था के साथ क्रमिक एकीकरण से हुआ है । गति और अनुक्रमिकता का विकल्प वित्तीय बाजारों में अस्थिरता का प्रबंधन करना रहा है और मौद्रिक परिचालनों के संचालन के लिए निहितार्थ रहा है । संपूर्ण पूँजीगत लेखा को खुला रखना अंततः स्वतंत्र मौद्रिक नीति, खुला पूँजीगत लेखा और प्रबंधित विनिमय दर की असंभव त्रयी का प्रबंध करने की चुनौती की ओर ले जायेगा । चालू वित्तीय क्षेत्र सुधारों के संदर्भ में यह मानने की आवश्यकता है कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में वास्तविक क्षेत्र के संबंध में वित्तीय उतार-चढ़ाव का प्रभाव परिपक्व अर्थव्यवस्थाओं से, जो तकनीक प्रधान उत्पादों में विशेषज्ञता प्राप्त होती हैं, जिनमें विनिमय दर अंतरण कम होता है, जिसके चलते निर्यातकर्ता और आयातकर्ता मुद्रा में बड़े उतार-चढ़ाव के बावजूद अस्थायी आघातों की उपेक्षा करने में समर्थ होते हैं और स्थिर उत्पाद कीमतें निर्धारित करते हैं, ताकि उनकी एकाधिकार की स्थिति बने, महत्वपूर्ण रूप से भिन्न होता है । इन देशों में परिपक्व और सुविकसित वित्तीय बाजार विनिमय दर उतार-चढ़ाव से संबद्ध जोखिमों को अवशोषित कर लेते हैं, जिसका नगण्य प्रभाव वास्तविक कार्यकलाप पर पड़ता है । दूसरी ओर, अधिकांश विकासशील देशों के लिए, जो श्रम प्रधान और न्यून एवं मध्यवर्ती तकनीकी उत्पादों में विशेषज्ञता रखते हैं, बड़े फुटकर विक्रेता शृंखला से असुरक्षित होते हैं, विनिमय दर एवं वित्तीय मूल्य अस्थिरता के रोजगार, उत्पादन और वितरण संबंधी महत्वपूर्ण नतीजे होते हैं, जो बदले में वित्तीय क्षेत्र स्थायित्व और सुदृढ़ता के लिए निहितार्थ रखते हैं ।

संपूर्ण पूँजीगत लेखा के खुलेपन के संदर्भ में नीति के लिए एक और चुनौती होगी , जैसे ही पूँजी बहिर्वाह और ऋण अंतर्वाह का बृहत्तर अविनियमन होता है,विभिन्न बाजारों की वित्तीय स्थिरता को सुरक्षित रखना

। वित्तीय मध्यवर्तियों की असुरक्षा पर संभवतः ध्यान विवेकपूर्ण विनियमों और उनके पर्यवेक्षण के माध्यम से किया जा सकता है; गैर वित्तीय कंपनियों के जोखिम का प्रबंधन कंपनी ऋण बाजार और विदेशी मुद्रा बाजार, दोनों की आगे की गतिविधियों के माध्यम से किया जाना होगा, जो उन्हें अपनी जोखिमों का प्रबंधन नयी बाजार लिखतों के माध्यम से करने में समर्थ बनाती हैं । इसके लिए बाजार का विकास करने की आवश्यकता होगी, इन क्षेत्रों में विनियामक क्षमता को बढ़ाना होगा तथा वित्तीय मध्यवर्तियों एवं गैर वित्तीय कंपनियों, दोनों में मानव संसाधन विकास को बढ़ाना होगा । पूँजी प्रवाह की अस्थिरता होने पर यह देखना होगा कि क्या भारत जैसे देश में वित्तीय बाजार का विकास इस प्रकार हो सकता है कि इस अस्थिरता का परिणाम विनिमय दर निर्धारण में अस्वीकार्य भंग नहीं होता, जिसका प्रभाव वास्तविक क्षेत्र पर और घरेलू मौद्रिक स्थिति पर हो ।

आगे बढ़ते हुए, चलनिधि प्रबंधन की नीति का अनुकूलन करने की निरंतर आवश्यकता बनी रहेगी, ताकि कारगर मौद्रिक प्रबंधन हो सके और अल्पावधि ब्याज दर को सहज बनाया जा सके । हम निरंतर जिन प्रमुख प्रश्नों का सामना कर रहे हैं वे ये हैं कि वृद्धि और वित्तीय स्थायित्व के हित में चलनिधि प्रबंधन की लिखतें और तरीके क्या होने चाहिए और पूँजी प्रवाह को विनिमय दर को कितना प्रभावित करना चाहिए । ये मुद्दे मुक्त पूँजी प्रवाह की प्रणाली में और अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं , हमारे देश में मौद्रिक और विनिमय दर नीतियों को निर्धारित करने में वैश्विक गतिविधियों की बढ़ी हुई भूमिका हो सकती है । वैश्विक अभिसरण के वातावरण में मौद्रिक नीति की स्वतंत्रता को बनाये रखना अधिक से अधिक कठिन होता जायेगा, जो लक्ष्यों और लिखतों के संदर्भ में कठिन विकल्प की मांग करेगा।

भारत में, हमने मुद्रास्फीति के लक्ष्य निर्धारण की नीति को नहीं अपनाया है, जबकि मुद्रास्फीति को कम रखना मौद्रिक नीति का केंद्रीय उद्देश्य बनाया गया है और उसके साथ उच्च एवं निरंतर वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है, जो किसी विकासशील देश के लिए बहुत महत्वपूर्ण है । वृद्धि को प्रमुख उद्देश्य के रूप में रखे जाने के संबंध में विधिसम्मत चिंता के अतिरिक्त ऐसे अन्य कारक भी हैं, जो यह संकेत करते हैं कि मुद्रास्फीति का लक्ष्य निर्धारण भारत के लिए युक्तियुक्त नहीं हो सकता है । पहला, अनेक अन्य विकासशील देशों के विपरीत हमारे यहाँ संयमित मुद्रास्फीति रही है, द्विअंकीय मुद्रास्फीति अपवाद के रूप में रही है और जो समाज द्वारा स्वीकार्य नहीं है । दूसरा, मुद्रास्फीति के लक्ष्य निर्धारण के लिए एक सुदक्ष मौद्रिक संचरण तंत्र की आवश्यकता सुदक्ष वित्तीय बाजार परिचालन और ब्याज दर विकृति के अभाव के माध्यम से होती है । तीसरा, स्फीतिकारक दबाव कभी-कभी महत्वपूर्ण आपूर्ति संबंधी आघातों से उत्पन्न हो सकते हैं, जो कृषि के संबंध में मानसून से संबंधित होते हैं, जहाँ मौद्रिक नीति की कार्रवाई की अल्प भूमिका हो सकती है। अंत में, एक ऐसी अर्थव्यवस्था में, जो क्षेत्रीय विभिन्नता के साथ भारत की अर्थव्यवस्था जितनी बड़ी हो, और फैक्टर एवं उत्पाद बाजारों में क्षेत्रों के बीच बाजार अपूर्णता निरंतर बनी हो, मुद्रास्फीति का वैश्विक रूप से स्वीकृत मापन भी कठिन है।

जैसाकि भारतीय संदर्भ में अनेक नीति वक्तव्यों में नोट किया गया है, सरकारी नीति के लिए प्रधान चुनौती उच्चतर वृद्धि पथ की ओर सहज संक्रमण है, जिसके साथ न्यून और स्थिर मुद्रास्फीति हो और भली-भाँति काबू में रखी गयी मुद्रास्फीति प्रत्याशाएँ हों । केंद्रीय बैंकिंग के परिप्रेक्ष्य में हमारे सामने उपस्थित नयी चुनौतियाँ अनेक हैं। पहला, यदि भारतीय बैंकिंग प्रणाली को अंतरराष्ट्रीय स्तर की श्रेष्ठता प्राप्त करनी है, तो इसे अनेक मोर्चों पर कार्रवाई करनी होगी, यथा, बड़ी प्रतिस्पर्द्धा आरंभ करना; कार्यकलापों का अभिसरण और वित्तीय संस्थाओं के समूह का पर्यवेक्षण; नयी प्रौद्योगिकी

लागू करना; ऋण जोखिम मूल्यांकन में सुधार; वित्तीय नवोन्मेषों को प्रोत्साहन, आंतरिक नियंत्रण में सुधार; और एक युक्तियुक्त विधिक ढाँचा स्थापित करना । इस संबंध में रिज़र्व बैंक की भूमिका सुरक्षा और सुदृढ़ता सुनिश्चित करने और बैंकिंग प्रणाली को प्रतिस्पर्द्धा और नवोन्मेष की अनुमति देने में है । दूसरा, केंद्रीय बैंक के रूप में रिज़र्व बैंक को आगे वित्तीय बाजार को विकसित करने की आवश्यकता होगी, खासकर मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति और विदेशी मुद्रा बाजारों का विकास करने की आवश्यकता होगी, ताकि कंपनी ऋण बाजार के साथ-साथ संचरण तंत्र की कार्यकुशलता बढ़ सके । तीसरा, ऋण विस्तार में प्रत्याशित वृद्धि और वैश्विक एकीकरण के साथ मूल्य स्थिरता और वित्तीय स्थिरता चिंता का विषय बनी रहेगी ।

जैसाकि भारतीय संदर्भ में अनेक नीति वक्तव्यों में नोट किया गया है, सरकारी नीति के लिए प्रधान चुनौती उच्चतर वृद्धि पथ की ओर सहज संक्रमण है, जिसके साथ न्यून और स्थिर मुद्रास्फीति हो और भली-भाँति काबू में रखी गयी मुद्रास्फीति प्रत्याशाएँ हों । केंद्रीय बैंकिंग के परिप्रेक्ष्य में हमारे सामने उपस्थित अनेक नयी चुनौतियाँ हैं। पहली, यदि भारतीय बैंकिंग प्रणाली को अंतरराष्ट्रीय स्तर की श्रेष्ठता प्राप्त करनी है, तो इसे अनेक मोर्चों पर कार्रवाई करनी होगी, यथा, बड़ी प्रतिस्पर्द्धा आरंभ करना; कार्यकलापों का अभिसरण और वित्तीय संस्थाओं के समूह का पर्यवेक्षण; नयी प्रौद्योगिकी लागू करना; ऋण जोखिम मूल्यांकन में सुधार; वित्तीय नवोन्मेषों को प्रोत्साहन, आंतरिक नियंत्रण में सुधार; और एक युक्तियुक्त विधिक ढाँचा स्थापित करना । इस संबंध में रिज़र्व बैंक की भूमिका सुरक्षा और सुदृढ़ता सुनिश्चित करने और बैंकिंग प्रणाली को प्रतिस्पर्द्धा और नवोन्मेष की अनुमति देने में है । दूसरी, केंद्रीय बैंक के रूप में रिज़र्व बैंक को आगे वित्तीय बाजार को विकसित करने की आवश्यकता होगी, खासकर मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति और विदेशी मुद्रा बाजारों का विकास करने की आवश्यकता होगी, ताकि कंपनी ऋण बाजार के साथ-साथ संचरण तंत्र की कार्यकुशलता बढ़ सके । तीसरा, ऋण विस्तार में प्रत्याशित वृद्धि और वैश्विक एकीकरण के साथ मूल्य स्थिरता और वित्तीय स्थिरता चिंता का विषय बनी रहेगी ।

संदर्भ

बॉल, एल और एन, शेरिडन (2003), 'डज इन्फ्लेशन टार्गेटिंग मैटर ?', एनबीईआर वर्किंग पेपर सं.9577।

इकॉनॉमिस्ट (2007), 'बैंक्स : कैपिटल पनिशमेंट', नवंबर 8।

आइकेनग्रीन, बैरी (2002), 'कैन इमर्जिंग मार्केट्स फ्लोट ? शुड दे इन्फ्लेशन टार्गेट ?' वर्किंग पेपर सिरीज 36, बैंको सेंट्रल डो ब्रासील, फरवरी।

फ्रागा, ए., मिनेला, ए. और गोल्डफाज्न आई, (2003), 'इन्फ्लेशन टार्गेटिंग इन इमर्जिंग मार्केट इकॉनॉमिज', एनबीईआर वर्किंग पेपर 10019ए अक्तूबर।

ग्रामलिक, एडवार्ड (2003), 'मेंटेनिंग प्राइस स्टेबिलिटी', इकॉनॉमिक क्लब ऑफ टोरंटो के समक्ष की गयी टिप्पणी, टोरंटो, कनाडा, अक्तूबर।

इशिंग, ओ. (2004), 'इन्फ्लेशन टार्गेटिंग : ए व्यू फ्राम दि ईसीबी', फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ सेंट लुई रिव्यू, खंड 86, सं.4, जुलाई/अगस्त।

जालान, बी.(2002), 'मॉनेटरी पॉलिसी : इज ए सिंगल टार्गेट रेलिवैंट ?', इन इंडियाज इकॉनॉमी इन दि न्यू मिलेनियम, चुने हुए लेख (सं.), बी. जालान, मुम्बई, यूबीएस पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स।

काह्न , डोनाल्ड एल. (2004), 'पैनल डिस्कशन : इनफ्लेशन टार्गेटिंग', फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ सेंट लुई, जुलाई - अगस्त।

मैक किन्नन, रोनाल्ड आई, 1973 । मनी एंड कैपिटल इन इकॉनॉमिक डेवलपमेंट, वाशिंगटन डी.सी.; ब्रुकिंग्स इंस्टीट्यूशन।

मैक किन्से क्वार्टर्ली (2007), ''इंडियाज एक्जीक्यूटिव्स : कंफिडेंट इन देयर इकॉनॉमी एंड ईगर टू हायर''।

मोहन राकेश (2004), ''चैलेंजेज टू मॉनिटरी पॉलिसी इन ए ग्लोबलाइजिंग कंटेक्स्ट'', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, जनवरी।

(2006ए), 'रिफॉर्म्स, प्रोडक्टिविटी एंड एफिसिएंसी इन बैंकिंग : दि इंडियन एक्सपीरिएंस', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, मार्च।

(2006बी), 'इवॉल्यूशन ऑफ सेंट्रल बैंकिंग इन इंडिया', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, जून।

(2006सी), 'मॉनेटरी पॉलिसी एंड एक्सचेंज रेट फ्रेमवर्क्स : दि इंडियन एक्सपीरिएंस', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, जून।

(2007ए), 'करेंट चॅलेंजेज टू मॉनेटरी पॉलिसी मेकिंग इन इंडिया', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, मार्च।

(2007बी), 'मॉनेटरी पॉलिसी ट्रांसमिशन इन इंडिया', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, अप्रैल।

(2007सी), डेवलपमेंट ऑफ फाइनैंशियल मार्केट्स इन इंडिया, भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, जून।

(2007डी), 'कैपिटल एकाउंट लिबरलाइजेशन एंड कंडक्ट ऑफ मॉनेटरी पॉलिसी : दि इंडियन एक्सपीरिएंस', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, जुलाई।

(2007ई), 'रिसेंट फाइनैंशियल मार्केट डेवलपमेंट्स एंड इंप्लिकेशन्स फॉर मॉनेटरी पॉलिसी', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, अक्तूबर।

रेड्डी, वाई.वी. (2004), 'फाइनैंशियल स्टेबिलिटी : इंडियन एक्सपीरिएंस', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, जुलाई।

(2007ए), 'ग्लोबलाइजशन एंड मॉनेटरी पालिसी : सम इमर्जिंग इश्यूज', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, अप्रैल।

(2007बी), 'सम पर्सपेक्टिव्ज़ ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी', भारतीय रिज़र्व बैंक बुलेटिन, नवंबर।

(2007बी), 'ग्लोबल डेवलपमेंट्स एंड इंडियन पर्सपेक्टिव्ज़ः सम रैंडम थॉट्स', 27 नवंबर 2007 को मुम्बई में बैंकर सम्मेलन 2007 में दिया गया दीक्षांत भाषण।

शॉ, एडवार्ड एस. 1973, फाइनैंशियल डीपेनिंग इन इकॉनॉमिक डेवलपमेंट, न्यूयार्क, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।